TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180602

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

समाधि

[ऐतिहासिक नाटक]

नाटककार

विष्णु प्रभाकर

ओरिएण्टल बुक डिपो

१७०४, नई सड़क देहली

तथा

प्रताप रोड, जालंधर शहर

मूल्य ३)

प्रकाशक—
ओरिएण्टल बुक डिपो,
दिल्ली, जालंधर।

मुद्रक—
कोरोनेशन प्रिंटिंग वर्क्स,
फतेहपुरी, दिल्ली।

भारत

के

नये प्रजातन्त्र

को

इस नाटक के गीत
कवि देवराज
दिनेश ने
लिखे हैं

भूमिका

'समाधि' की कथा भारत के प्राचीन काल के अन्तिम दौर की कथा है। वाकाटक-गुप्त-युग का भारतवर्ष अपनी जिस सभ्यता संस्कृति और समृद्धि के लिये विख्यात है उसी की अन्तिम चमक इस ऐतिहासिक नाटक में देखने को मिल सकती है। यह शान्ति-युग की समाप्ति और मध्यकाल के आरम्भ की कथा है और इस कथा का ऐतिहासिक नायक है जनेन्द्र यशोधर्मन। नाटक की कथा का भी वही प्रमुख पात्र है। फिर भी नायकत्व का भार सहज ही उसके कन्धे से उतर कर एक नारी पर जा पड़ा है। नाटक का आरम्भ करते समय वह नारी मेरे सामने नहीं थी पर जैसे ही लेखनी ने कागज़ों को चित्रित करना शुरू किया, शब्दों के पीछे से आनन्दी की आकृति उभर उठी। वह आकृति उस युग की वेदना और बलिदान की प्रतिमूर्ति है। उस युग के इतिहास में उसका नाम भले ही न लिखा हो पर तत्कालीन पीड़ित जनता की, जनता के उस अद्‌भुत विद्रोह की वह प्रतीक है। इसीलिये लेखक ने उसको सहर्ष स्वीकार कर लिया। और रास्ता ही न था।

यूँ तो नाटक के ऐतिहासिक नायक यशोधर्मन के इतिहास का भी अभी तक कोई सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो सका है। यह बात नहीं कि उसके बारे में खोज नहीं हुई। इतनी हुई कि वह ऐतिहासिक से पौराणिक अवतार बन गया। वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड और कल्कि पुराणों में उसका वर्णन आता है। जायसवाल ने यशोधर्मन और कल्कि भगवान

की तुलना पर एक लेख लिखा है (Indian Antiquerry 1917) विक्रमसम्वत् का चलाने वाला विक्रमादित्य भी वह बना है। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने तो कालिदास आदि नवरत्नों को उसी के दरबार में खोज निकाला है। गुप्तों के बाद का भारत-सम्राट् तो उसे अनेकों ने माना है। परन्तु सत्य यह है कि इतिहास उसके बारे में कोई अधिक प्रमाणित सामग्री उपस्थित नहीं करता। उसके कुल, जाति और यहाँ तक नाम के बारे में भी मतभेद रहा है। वह किसी राज-वंश में था या साधारण जनसेवक रहा, इस बारे में भी विवाद है। जो एकमात्र प्रमाण उसकी कथा पर प्रकाश डालता है वह एक प्रस्तर-स्तम्भ है जो आज भी दशपुर (वर्तमान मन्दसोर जो मध्यभारत में स्थित है) में पड़ा हुआ है। यह वास्तव में विजयस्तम्भ है। इस पर लिखा है—"उसने उन प्रदेशों को भी जीता जिन पर गुप्त सम्राटों का आधिपत्य नहीं था और न जहाँ राजाओं के मुकुटों को ध्वस्त करने वाले हूणों की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी। लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से लेकर महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा) तक और गंगा से स्पृष्ट हिमालय से लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशों के सामन्त उसके चरणों पर लोटते थे। मिहिरकुल ने भी जिसने भगवान शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नहीं नवाया, अपने मुकुट के पुष्पों द्वारा युगल चरणों को अर्चना की।"

ये भुक्ता गुप्तनाथैर्न सकलवसुधाक्रान्तिदृष्टप्रतापै-
र्नाज्ञा हूणाधिपानांक्षितिपतिमुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्टः।
चूर्णा पुष्पोपहारैर्मिहिरकुलनृपेणार्चितं पादयुग्मम्॥

(१. १. ३. नं० ३३; पृष्ठ १४६, १४८)

हुएन-त्सांग तथा देववर्णार्क और सारनाथ के लेखों के आधार पर गोकुलदास वन्द्योपाध्याय ने बालादित्य को हूण विजेता माना है। वस्तुतः बालादित्य किसी राजा का नाम नहीं था। यह तत्कालीन

राजाओं का सामान्य विरुद होगया था। इसलिये अब इतिहासकारों ने यह मान लिया है कि हूणों को पराजित करने वाला वालादित्य गुप्त वंश का अन्तिम सम्राट् भानुगुप्त वालादित्य था। इसके राज्यकाल के बारे में मतभेद है पर लेखक ने सोच विचार कर पं० जयचन्द्र विद्यालंकार के काल-निर्णय को मान लिया है जो लगभग ५०८–५२८ ई० है। इस नाटक के प्रथम अंक का नायक यही वालादित्य है। कुछ काल के लिये अर्थात् ५१० ई० में एरण (तत्कालीन मालवा की एक प्रधान नगरी) के युद्ध के बाद से लेकर लग० ५२७ ई० तक, जब उसने मिहिरकुल को गंगा के कछार में भटका कर कैद कर लिया था, उसे तोरमाण के बेटे मिहिरकुल को अपना अधिपति मानना पड़ा था! कैद करके भी अपनी माँ के कहने पर उसने हूण सम्राट को छोड़ दिया। उसका परिणाम भारत को भुगतना पड़ा। इधर उधर भटक कर जब मिहिरकुल को काश्मीर में शरण मिली तो सम्भवतः आर्यों ने सोचा होगा कि चलो हूण सदा के लिये परास्त हो गये। परन्तु मिहिरकुल चुप बैठने वाला नहीं था। उसने अवसर पाते ही अपने शरणदाता को ही नष्ट करके काश्मीर का राज्य हथिया लिया। "तब फिर उसने गान्धार पर चढ़ाई की और वहाँ बड़े अत्याचार किये। हूणों के दो तीन आक्रमणों से तक्षशिला सदा के लिये मटियामेट होगया।" (इतिहासप्रवेश-जयचन्द्र विद्यालंकार)। तब तक भानुगुप्त की मृत्यु हो चुकी थी। उसके उत्तराधिकारी थे या नहीं थे—इस बारे में कोई निश्चित मत नहीं है। पर वे हों तो और न हों तो, उत्तराकालीन गुप्तों ने हूणों का डट कर मुकावला नहीं किया। "पंजाब, थानेसर और मालवा को गुप्त सम्राट हूणों से न बचा सके, तब वहाँ की सारी प्रजा हूणों के खिलाफ उठ खड़ी हुई। उसका अगुआ 'जनता का नेता' यशोधर्मन नाम का एक व्यक्ति था। उसने वह काम कर दिखाया जो गुप्त सम्राटों के वंशज न कर सके थे। इस नाटक के दूसरे तथा तीसरे

अंक का ऐतिहासिक नायक यही जनता का नेता (जनेन्द्र) यशोधर्मन है। यूं कुछ इतिहासकार मानते हैं कि मालवा के राजा यशोधर्मन और मगध के राजा बालादित्य ने हूणों के विरुद्ध एक संघ बनाया था और भारत के शेष राजाओं के साथ मिल कर मिहिरकुल को परास्त किया था। यह बात अब असत्य हो चुकी है। भले ही यशोधर्मन गंगा के कछार वाले युद्ध में रहा हो (जैसा कि लेखक ने भी माना है, वह था) पर वह राजा नहीं था। उसकाल में वहाँ कोई माण्डालिक नरेश, जो हूणों का आधिपत्य मानता था, राज्य करता था। और जब यशोधर्मन ने मालवा में विद्रोह का नेतृत्व करके हूणों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा तब बालादित्य मर चुका था। इसलिये उन दोनों ने मिलकर मिहिरकुल को परास्त करने की बात जयचन्द्र विद्यालंकार की तिथियों के अनुसार ग़लत है। जो कुछ किया वह अकेले यशोधर्मन ने किया। वह राजवंश से सम्बन्ध नहीं रखता था और न उसने अपना कोई राजवंश स्थापित किया। उसके बाद गुप्त साम्राज्य पुनर्जीवित हुआ! कुछ इतिहासकार इसे गुप्तों का माण्डलिक भी मानते रहे हैं।

यशोधर्मन के विजयस्तम्भ को सच स्वीकार करें तो मानना पड़ेगा कि भारत के बहुत बड़े भाग पर उसका आधिपत्य था। पर वास्तव में इस प्रशस्ति में अतिशयोक्ति और अतिरंजन है। कवि अर्थशास्त्र में विश्वास नहीं करता, फिर भी इतना तो सच ही है कि कम से कम मध्यभारत में उसने हूणों की शक्ति समाप्त करके एकच्छत्र शासन स्थापित किया। भगवतशरण उपाध्याय ने प्राचीन भारत के इतिहास में लिखा है— "प्रमाणित है कि यह सम्राट मालवा का था और अधिकतर उसके प्रताप और शासन का प्रसार हूणों की मालवा भूमि पर ही हुआ था। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उसकी प्रशस्ति में अतिरंजन हैं, परन्तु यह निश्चित है कि उसने मिहिरकुल को पराजित कर मालवा में हूणों की शक्ति तोड़ दी। सम्भवतः उनको मालवा से निकालने के ही उपलक्ष्य में उसने अपना विक्रमादित्य विरुद धारण किया।" (पृष्ठ २९३)

यशोधर्मन और मिहिरकुल का युद्ध सन् ५३२ से कुछ पूर्व हुआ होगा, पर इतिहासकार मानते हैं कि मिहिरकुल उसके १०-१५ वर्ष बाद तक जीवित रहा। उसके मरने पर हूण शक्ति टूट गई। "धीरे-धीरे हूण हिन्दू समाज में घुलमिल गए और आज की हिन्दू जाति के अनेक स्तर हूणों की देन हैं।" (वही पृष्ठ २१३)

लेखक ने इस नाटक की कथा को मालवा से हूणों के बहिष्कार तक ही सीमित रखा है। इसलिये वह प्रशस्ति के अतिरंजन से बच गया है। आनन्दी गान्धार की पंडिता भिक्षुणी है। उसकी प्रतिहिंसा के बलिदान में परिणित होते ही नाटक की कथा समाप्त हो जाती है, पर इसी बीच में जनेन्द्र यशोधर्मन का भी पाठकों को यथेष्ट परिचय मिल जाता है। वह इतिहास के जनेन्द्र से बिल्कुल दूर नहीं है। नाटक के दूसरे पात्रों में भी तत्कालीन या मध्य काल के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। प्रथम अंक में जिस द्रोणसिंह का वर्णन है वह सौराष्ट्र (काठियावाड़) में छठी शती के आरम्भ में जो मैत्रकवंश स्थापित हुआ था, उसका वंशज था। "उसका समूची पृथ्वी के एक स्वामी' अर्थात् गुप्त सम्राट् ने स्वयम् राज्याभिषेक किया। मैत्रकों का राजवंश तब से वलभी नगरी (भावनगर के पास) में स्थापित हो गया।" (इतिहास-प्रवेश पृष्ठ १६१-१६२) कुमार कीर्तिवर्मा को लेखक ने मौखरियों का प्रतिनिधि मान कर लिया है। जयचन्द्र विद्यालंकार की मान्यता के अनुसार "मौखरी लोग पहले पहल हूणों के युद्ध में प्रसिद्ध हुए। सम्भवतः ये यशोधर्मन की सेना की हरावल में रहे थे।" वहीं इन्होंने पिछले गुप्तों के मुकाबले में अन्तर्वेद के ठीक बीच में दक्खिन पंचाल की राजधानी कन्नौज में अपना राजवंश स्थापित किया। सम्राट् हर्ष की बहन राज्यश्री का विवाह इसी वंश के राजा ग्रहवर्मा से हुआ था। इस नाटक में एक सामन्त नरवर्धन की चर्चा भी है वह कुरुदेश के वैसवंश का सामन्त था। इसीने वैसवंश को राजवंश बनाया।

इसकी राजधानी स्थाणेश्वर (वर्तमान थानेसर) थी। जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार "कुरुदेश का वैसवंश भी हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुआ।" (इतिहासप्रवेश पृष्ठ १५६)। मध्य काल का प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन इसी राजवंश का भूषण था।

इनके अतिरिक्त जो पात्र हैं उनके नाम इतिहास के पात्रों में उस स्याही से नहीं लिखे गये हैं जो पढ़ी जा सके। वे सब अदृश्य स्याही के पीछे छिपे हुये हैं। और कुछ भी क्या न हों, वे इतिहास की किसी मान्यता को झुठलाते नहीं हैं, बल्कि उसकी सभ्यता को वैज्ञानिक रीति से प्रमाणित करते हैं। मिहिरकुल के अत्याचारों की मूर्तिमती प्रतिमाएँ भिक्षुणी, आनन्दी, मालवी, सेनापति रविवर्मा, बौद्ध स्थविर ज्ञानायन और श्रेष्ठिहरिगुप्त आदि हैं। कवि और जनता, विद्रोह की साक्षी देने के लिए नाटक में आए हैं। हूणों की शक्ति उन्हें युद्ध में परास्त करने पर ही नहीं तोड़ी जा सकती। नाटक के यशोधर्मन के शब्दों में "उनकी राजनीतिक शक्ति तोड़ कर उन्हें समाप्त करने का एकमात्र वैदिक मार्ग उन्हें अपने में आत्म-सात् कर लेना है।" इसीके लिये हूण कन्या भारती और मिहिरकुल की बेटी शाहज़ादी की सृष्टि हुई है। शाहज़ादी का भविष्य नाटक में स्पष्ट नहीं किया गया। उसका कारण यह है कि यशोधर्मन की कहानी ही पूरी नहीं होती, फिर भी वह बिलकुल अस्पष्ट नहीं है।

उस युग में सवर्ण विवाह का स्वर उठने लगा था परन्तु अभी जन्म-सवर्ण का विचार दृढ़मूल नहीं हुआ था। इस बात का वर्णन इस नाटक में भी आता है और वह हूणों के अत्याचार से उत्पन्न हुआ जान पड़ता है। बाद में ये हूण तो आर्यों में मिल ही गये। चेदिराज गयाकर्ण की माता तथा चेदिराज कर्ण की राजमहिषी अवन्ती देवी हूणवंश की थीं (Epigraphia Indica Vol II Page 309).

हाँ, उसके बाद आर्यों में वर्जनशीलता बढ़ गई। ये गिरते चले गये। यशोधर्मन ने इस बात की चेतावनी दी है। वह वस्तुतः एक अद्भुत चरित्र है। राजा न होकर भी वह शासक है। शासक होकर भी वह जनता का नेता है। राजवंश स्थापित न करके वह वंश परम्परा से होने वाले राजाओं की प्रथा का खण्डन करता है। राजवंश के उस युग में वह प्रजातन्त्र का अग्रदूत है, पर शायद तत्कालीन समाज इस बात के लिये तैयार नहीं था, इसलिये वह भावना राजाओं की अराजकता के भँवर में फँस कर नष्ट होगई। यशोधर्मन के शान्ति युग के साथ हमारे इतिहास का प्राचीन काल समाप्त होता है।

यह तो इतिहास की कहानी है। नाटक की सारी कथा उसी को प्रचारित करती है। फिर शुष्क इतिहास को पीछे छोड़कर उसमें मानवीय भावना ऊपर आगई है। पर उसके बिना नाटक नाटक न बन पाता। लेखक तो मानता है कि वह भावना अब भी कुछ कम ही रह गई है। उस काल के रीति-रस्मों की चर्चा करते समय लेखक ने हरिदत्त वेदालंकार की पुस्तक 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास' से भी सहायता ली है। श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'प्राचीन भारत का कला-विकास' तो सामने रहा ही है। नाटक में जो एक और नाटक खेला गया है उसकी कथावस्तु श्री विराज के एक लेख से ली है और उसका विधान द्विवेदी जी की पुस्तक से। उस नाटक का पात्र अतीला भी विशुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति है। वेशभूषा के लिये डा० मोतचिन्द्र की 'प्राचीन भारत में वेश भूषा' को लेखक ने आधार माना है। यह नाम इस लिये गिनाये है कि नाटक में जो कुछ है उसे प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है। कल्पना की आड़ लेकर इतिहास के तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा नहीं गया है और न कथा को ही विकृत किया है। हूणों के रूप रंग और स्वभाव का वर्णन भी इतिहास के सर्वमान्य आधार पर किया गया है। उनकी बनावट और व्यवहार में

आततायीपन था। जितना नरसंहार उन्होंने किया उतना शायद किसी जाति ने नहीं किया। मिहिरकुल का पिता तोरमाण इस बात को समझ गया था कि भारत में भारतीय बन कर ही रहा जा सकता है। उसने यहाँ का धर्म भी स्वीकार कर लिया था परन्तु मिहिरकुल ने उसकी नीति का विरोध किया। उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया, परन्तु सफल नहीं हुआ। कहते हैं यह विद्रोह उसने बौद्धों के उकसाने पर किया था। पर समय पर साथ न देने पर वह उनका कट्टर शत्रु होगया और उसने शैव मत धारण कर बौद्धों और बौद्ध-विहारों को नष्ट करने की ठान ली। वस्तुतः भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में—"वह पिता से भी अधिक नृशंस था और क्रूरता के कार्यों से बड़ा प्रसन्न होता था। हुएन-त्सांग और कल्हण, दोनों ने उसकी क्रूरता का वर्णन किया है! चीनी यात्री ने लिखा है कि मिहिरकुल बौद्धों के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार करता था। उन्हें वह मरवा और उनके विहारों तथा स्तूपों को जलवा देता था। उसका एक विचित्र व्यसन हाथियों का वध करना था। हाथी पहाड़ की चोटी पर चढ़ा कर नीचे गिरा दिये जाते थे। गिरते हुए हाथियों का कातर चिंग्घाड़ उसे बड़ा प्रिय लगता था।" (प्राचीनकाल का इतिहास पृष्ठ २९२)। हूण लोग वैसे वराह-अवतार की उपासना करते थे।

इस नाटक की कथावस्तु इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। बालादित्य और फिर यशोधर्मन के प्रयत्नों के बावजूद देश में स्थायी शान्ति स्थापित न हो सकी, बल्कि कुछ ऐसी राजनीतिक और सामाजिक कुरीतियाँ पनप उठीं जिन्होंने आगे चल कर देश की न केवल राजनीतिक शक्ति को दुर्बल किया बल्कि सभ्यता और संस्कृति को भी विकृत कर दिया। जनता का न राजा में विश्वास रहा और न पंचायतराज ही पनप सके। उनके स्थान पर जातीय पंचायतें पैदा हो गईं। राजा लोग या तो युद्ध करते थे या फिर विलास में डूबे

रहते थे। जनता का उनसे कोई सम्पर्क नहीं रह गया था। इस कारण भी राष्ट्रीय शक्ति दुर्बल पड़ रही थी। सबसे बुरी बात तो यह थी कि हिन्दू संस्कृति में संकोच आरम्भ हो गया था। यद्यपि हूणों को आर्यों ने अपने में मिला कर क्षत्रियों का पद दिया पर साथ ही रक्तशुद्धि की भावना बलवती हो उठी। इसलिये अन्तर्जातीय विवाह और दूसरे पारस्परिक सम्बन्धों की बात पीछे छूटने लगी। यह सब जाति भेद के दोष के कारण हुआ। इस नाटक में इन सब बातों का आभास मात्र है।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि जिन हूणों ने यूरोप और एशिया में रक्त की नदियाँ बहाई थीं और जो अत्याचार का साकार रूप बन गये थे उन्हें भारत के आर्य निगल गये। हूण वास्तव में तातारी थे और मध्यएशिया की जेई-सेई नदियों के उत्तरपूर्वी तुर्किस्तान के निवासी थे। ईरान, काबुल और कंधार जीत कर इन्होंने जब सन् ४५५ में भारत पर आक्रमण किया तब स्कन्दगुप्त की बलिष्ठ भुजाओं ने उन्हें वापिस लौटने पर विवश किया। विलासी गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त के ये अन्तिम दिन थे। स्कन्दगुप्त के राज्यकाल में (४५५–४६७) वे फिर इधर न लौटे। पर सन् ५०० में गान्धार के हूण राजा तोरमाण "शाही जऊब्वल" ने गुप्त साम्राज्य को दुबलेपा कर पंजाब से मालवा तक के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उसके बाद की कथा नाटक में आ ही जाती है।

नाटक में प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट्ट और वराहमिहिर के नाम भी आए हैं। आर्यभट्ट ४७६ ई० में पाटलीपुत्र में उत्पन्न हुआ और २३ वर्ष की आयु में उसने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' लिखा। वह भारत का महान वैज्ञानिक था। यह पता लगाने वाला कि पृथ्वी अपने अक्ष के चारों ओर घूमती है, वह पहला भारतीय था। यशोधर्मन के अभ्युदय के समय वह पचास की आयु पार कर चुका था।

तब वह काफी प्रसिद्ध रहा होगा। वराह मिहिर तब अपेक्षाकृत युवक था, क्योंकि उसका जन्म सन् ५०५ में हुआ। मालवा में जब जनेन्द्र ने सन् ५३२ में हूणों को शक्ति तोड़ी तब वह २७ वर्ष का रहा होगा, पर उसकी विद्वत्ता को देखते हुये इस नाटक में उसका नामोल्लेखक कोई कठोर कल्पना नहीं है। फिर भो उसके लिये लेखक का हठ नहीं है।

कला-साहित्य की भी नाटक में बहुत चर्चा है। वाकाटक-गुप्त-युग की सभ्यता और संस्कृति भारत के स्वर्ण-युग की सभ्यता और संस्कृति है। इस युग में कला और साहित्य ने जो उन्नति की वह भारत के इतिहास में अद्वितीय है। इसलिये उसकी चर्चा का इस नाटक में होना अनिवार्य था। नाट्य-कला को मैंने जन-जागृति का अस्त्र माना है, सो ठीक ही है। कवि कालीदास के युग के कुछ काल बाद ऐसा होना असम्भव नहीं है। संगीत और नाट्य-कला इस दृष्टि से हैं भी शक्ति-शाली। यद्यपि 'अतीला का अन्त' नामक नाटक ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है तो भी जिस प्रकार लेखक ने उसका उपयोग किया है वह उसकी कल्पना ही है! वैसे लेखक ने साहित्य और कलाप्रेम का सन्तुलित उपयोग ग्राह्य माना है। गुप्तों के पतन का एक कारण उनका असन्तुलित कला प्रेम भी माना जाता है। असन्तुलित कला प्रेम ही विलास है। इस नाटक का कवि बारबार सांस्कृतिक दिग्विजय का दावा पेश करके भी विलासिता का विरोध करता है। वह जितनी कुशलता से कविता कर सकता है उतनी ही खूबी से तलवार भी चला लेता है। यह समवन्य इस नाटक की रीढ़ है। पर इतिहास साक्षी है कि हर्ष के बाद यह समन्वय भारत से युगों के लिये लुप्त हो गया।

आज का भारत इस युग की कथा से बहुत कुछ सीख सकता है। सीखने का अर्थ उस युग को वापिस लाना नहीं है पर उसकी

भावना को आत्मसात् करके तत्कालीन परिस्थितियों से जूझना है। लेखक को इतिहास से प्रेम होकर ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित नाटक और कहानी आदि लिखने की विशेष रुचि नहीं है पर, यशोधर्मन की कथा ने उसे सदा आकर्षित किया है। सम्राटों के युग में जनेन्द्र का उदय कोई कम क्रान्तिकारी घटना नहीं है और फिर उदय होकर इतना शीघ्र अस्त हो जाना भी कई कारणों से अध्ययन का विषय है। इसलिये लेखक इस पर लिखना चाहता था। रेडियो के लिये एक बार कुछ लिखा भी था पर तब से लेकर इस विषय पर हिन्दी में दो नाटक लिखे जा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक और उनकी कथावस्तु में मूल से तो समानता है पर उसके बाद भिन्नता ही भिन्नता है। ऐतिहासिक तथ्य तक विपरीत हो गये हैं। बहरहाल उनकी आलोचना यहां अनुचित है। हर लेखक का अपना दृष्टिकोण होता है। उनकी चर्चा यहां इसीलिये है कि अब लेखकों का ध्यान इस अब तक के उपेक्षित, पर महान व्यक्ति की ओर जाने लगा है।

नाटक जैसा है वह पाठकों के सामने है। उसे वे पढ़ें और जानें, लेकिन वे इतना स्मरण रखें कि यह नाटक बीसवीं सदी में लिखा गया है। जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उनका नामोल्लेख ऊपर आ ही गया है। उसके अतिरिक्त भी अनेक पुस्तकों, पात्रों और पत्रिकाओं से सहायता ली गई है। कई परिचित और अपरिचित मित्रों को भी कष्ट दिया है। वे सब लेखक की कृतज्ञता के अधिकारी हैं; विशेष कर तरुण कवि देवराज दिनेश का लेखक बहुत ही आभारी है। यदि वे अपनी स्वाभाविक सहृदयता के कारण इस नाटक के गीत न लिख देते तो लेखक समझता है कि इसका रस सूख न जाता तो खण्डित अवश्य हो जाता!

और क्या?

३३४६, पीपल महादेव,
पो० बा० ११६७, दिल्ली।

विष्णु प्रभाकर
११-६-१६५२

पहला अंक

पहला दृश्य

समय सन् ५२४–५ के आसपास

स्थान मगध साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र

[रंगमंच पर राजभवन के बाहरी कक्ष का दृश्य। वह कक्ष महाराज की कला-प्रियता का परिचय देता है। दीवारों पर कई सुन्दर चित्र टंगे हैं। द्वार-स्तम्भों पर खुदाई का काम है। नीचे धरती पर सुन्दर-सुन्दर ग़लीचे बिछे हैं। एक ओर एक बड़ी आसन्दी सिंहासन के रूप जैसी रखी है। उसी के पास दोनों ओर चार-चार और आसन्दियाँ बिछी हैं। बीच वाली आसन्दी पर बहुमूल्य वस्त्र की गद्दी है, शेष पर भी सुन्दर कलापूर्ण गद्दियाँ हैं। उन्हीं के अनुरूप तकिए हैं। इस समय वे सब ख़ाली हैं। परदा उठने के बाद भी कई क्षण वे ख़ाली रहती हैं। फिर बाईं ओर से एक ढलती उमर के राजपुरुष वहां प्रवेश करते हैं। उनके मुख पर तेज है, केश श्वेत हो चले हैं, पर नेत्रों में प्रकाश है और चिबुक में दृढ़ता। उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल और आजानुबाहु-संयुक्त उनका व्यक्तित्व वीरता का द्योतक है। वह चाकदार कंचुक, एड़ी तक की धोती पहने हैं। सिर पर सजी पगड़ी है। इस समय वे अत्यन्त गम्भीर हैं। आकर वे बीच वाली आसन्दी पर बैठ जाते हैं। वे मगध-सम्राट् भानुगुप्त बालादित्य हैं। कई

अग्र चिबुक पर हाथ रखे वे किसी गहन विचार में डूबे रहते हैं। फिर अनजाने में उठते हैं और धीरे-धीरे टहलने लगते हैं। उनके हाथ पीठ पर बंध गये हैं और मस्तक कभी धरती की टोह लेता है तो कभी आकाश की गहराइयों में कुछ खोजना चाहता है। टहलते-टहलते वे अनजाने ही गर्दन उठाकर बोल उठते हैं।]

भानुगुप्त-बालादित्य (स्वगत) **अवसर ! हाँ, यह अच्छा अवसर है। अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से पाने और साम्राज्य का फिर से उद्धार करने का यह सुन्दर अवसर है। सारा प्रदेश उसके भयंकर अत्याचारों के नीचे पिस रहा है। सब उससे छुटकारा पाने को आतुर हैं। महामात्य कहते हैं कि बस मेरे विद्रोह करने की देर है एक बार फिर भारत के सभी वीर उस अत्याचारी हूण से लड़ने को उठ खड़े होंगे। एरण के युद्ध में जिस वीरता का प्रदर्शन हुआ था, एक बार वह फिर जाग उठेगी।**···(क्षणिक मौन) **क्या सच ऐसा होगा? क्या जिस प्रकार परमभागवत आर्य स्कन्दगुप्त ने हूणों का नाश किया था उसी प्रकार मैं भी उन्हें एक बार फिर भारत की सीमा से परे खदेड़ सकूंगा**···(क्षणिक मौन, सम्राट ऊपर की ओर देखते हैं) **क्या सच मैं हूणों को परास्त कर सकता हूँ? क्या मैं भारत का विदेशियों से उद्धार कर सकता हूँ? क्या मैं गुप्तवंश की डावाँडोल भाग्य-लक्ष्मी को फिर से स्थिर कर सकता हूँ?**····(एकदम) **क्यों नहीं कर सकता! अवश्य कर**

सकता हूं। मेरी धमनियों में परमभागवत आर्य समुद्रगुप्त, आर्य चन्द्रगुप्त और आर्य स्कन्दगुप्त का रक्त बहता है। मैंने स्वयं एरण के युद्ध में तोरमाण की विशाल सेना के दांत खट्टे किये थे। क्या हुआ तब गोपराज जैसे महावीर सेनापति मेरे साथ थे! अब भी द्रोणसिंह है और वह मालववीर, वह अज्ञात सैनिक, वह कितना तेजस्वी है! कितने उत्साह से उसने कल कहा था—'विदेशियों को भारत पर शासन करने का अधिकार नहीं है। उन्हें हमें दास बनाने का अधिकार नहीं है। हम उन्हें निकाल कर दम लेंगे। हम अपने ही देश में दास नहीं बनेंगे। यह देश हमारा है; यह धरती हमारी है; यह आकाश हमारा है। यहां का जल, यहां की मिट्टी, यहां की वायु सब हमारी है, हमारी रहेगी'। (एकदम उत्साहित होकर) **हाँ, हमारी रहेगी, हमारी है और हमारी रहेगी।**

[इसी समय महादेवी मंच पर प्रवेश करती है। वह चोली तथा एड़ी तक पहुंचती साड़ी पहने है जो सुनहरे किनारों वाले कमरबंध से बँधी है। कन्धों पर महीन चादर डाले है। गले में, बाहु पर, कटि में आभूषण है। सिर पर टोपी या पगड़ी जैसा कोई परिधान है। आयु महाराज की अपेक्षा कम है पर यौवन उनका भी ढल चला है। मुख पर न आह्लाद है और न उदासीनता; हर हाल सन्तुष्ट रहने की भावना है। महाराज को इस प्रकार बोलने देख चकित होती हैं, फिर मुस्कराती हैं।]

महादेवी (मुस्कराकर) क्या है महाराज ! क्या है हमारी !

भानुगुप्त (उसी प्रवाह में) यह मिट्टी, यह जल, यह वायु, यह आकाश, यह सब हमारे हैं और हमारे रहेंगे ।

महादेवी इस बात का सम्राट् को क्या आज ही पता लगा है ?

भानुगुप्त हाँ महादेवी ! आज ही पता लगा है । पहले समझ लेता तो मिहिरकुल की दासता कैसे स्वीकार करता !

महादेवी मिहिरकुल की दासता का कारण क्या केवल यही है, देव ?

भानुगुप्त यह नहीं तो और क्या है ?

महादेवी देश में आन्तरिक विद्रोह, परस्पर द्वेष और प्रतिस्पर्धा ।

भानुगुप्त ठीक है महादेवी ! लेकिन यह सब इसीलिये तो है कि हम अपने देश को, अपनी धरती को प्यार करना भूल गये हैं । हम भूल गये हैं कि एकता में शक्ति और जय है और विद्वेष में विश्रृंखलता और पराजय है ।

महादेवी सम्राट् शायद ठीक कहते हैं । लेकिन सम्राट्....

भानुगुप्त सम्राट् ! मैं सम्राट् कहां हूँ महादेवी ! सम्राट् थे परम-भागवत आर्य समुद्रगुप्त, और आर्य स्कन्दगुप्त । मैं तो केवल एक दास हूँ । एक विदेशी का दास... ...विदेशी का दास महादेवी ! उस विदेशी का दास जिसे एक दिन मैंने स्वयं युद्ध में पराजित किया था ।

[राजमाता का प्रवेश । वह धारीदार घघरा चोली और चादर पहने है । आभूषण प्रायः नहीं हैं । सिर पर भी वस्त्र नहीं है, पर केश रूमाल से बंधे हैं । सादगी है, मुख पर गम्भीरता है । वृद्धावस्था ने शरीर को थका दिया है, पर मन अभी दृढ़ है । वह सम्राट् की बात सुन लेती है ।]

राजमाता — एक दिन पराजित किया था तो फिर भी कर सकते हो। इस प्रकार हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं है।

भानुगुप्त — कौन ! माँ ! (महादेवी अन्दर जाती है)

राजमाता — हाँ, इस प्रकार हतोत्साहित क्यों हो रहे हो ?

भानुगुप्त — मैं हतोत्साहित नहीं हो रहा हूँ, माँ। मैं विद्रोह करने की बात सोच रहा हूँ।

राजमाता — विद्रोह तो करना ही चाहिये। खोई हुई लक्ष्मी को पाने का यह स्वर्ण अवसर है भानु !

भानुगुप्त — निस्सन्देह, गुप्तवंश की डावाँडोल भाग्यलक्ष्मी को मैं फिर से स्थिर करूंगा। मैं दासता के कलंक को मिटा कर रहूंगा। मैं मालवा, सौराष्ट्र, गुजरात—अपने खोये हुये सब प्रदेशों को फिर से जीतूंगा।

राजमाता — जीतना ही होगा, बेटा ! नहीं जीतोगे तो हूणों की बर्बरता सारे देश को निगल जायेगी, भानु ! आज जो तक्षशिला के कुछ नागरिक यहां पहुंचे हैं उनमें दो भिक्षुणियाँ भी हैं। दोनों में जो युवति है उसने जो कुछ मुझे सुनाया, उसे सुन कर मैं लज्जा से आप ही जल उठी। विश्वास नहीं आता कि मनुष्य भी इतना बर्बर हो सकता है।

भानुगुप्त — मनुष्य सब कुछ हो सकता है, माँ ! मनुष्य जो है। इसी मगध पर जब शकों ने आक्रमण किया था तो इतने मागध पुरुष मर गये थे कि रक्षा करने और हल चलाने तक का काम भी स्त्रियों को करना पड़ा था।

राजमाता — लेकिन ये राक्षस तो स्त्रियों को भी नहीं छोड़ते, बेटा ! उनके साथ जैसा व्यवहार करते हैं वह—वह मौत से कहीं भयंकर है।

भानुगुप्त जानता हूँ माँ ! मैं सब कुछ जानता हूँ, लेकिन अब उसका अन्त आ पहुंचा है। मैं उसको बता दूंगा कि गुप्त वंश की शक्ति अभी कुण्ठित नहीं हुई है। मैं विद्रोह करूंगा। मैं अभी युद्ध की घोषणा करूंगा।

राजमाता मुझे तुमसे यही आशा थी भानु ! मैं उस भिक्षुणी को तुम्हारे पास भेजे देती हूँ। उसमें अद्भुत शक्ति है। वह प्रतिशोध की अग्नि में धधक रही है। उसकी करुण गाथा तुम्हारी शक्ति बनेगी। मिहिरकुल का पाप साँप बन कर उसी को डसेगा। अत्याचार सदा अपने कर्त्ता की मृत्यु की घोषणा करता है बेटा !

[जाती है]

भानुगुप्त (क्षण भर बाद, स्वगत) अत्याचार सदा अपने कर्त्ता की मृत्यु की घोषणा करता है...अत्याचार सदा...

[महादेवी का प्रवेश]

महादेवी मैंने कहा, देव...

भानुगुप्त तुमने सुना महादेवी ! माँ कहती है कि अत्याचार सदा अपने कर्त्ता की मृत्यु की घोषणा करता है।

महादेवी मैं माँ की बात का विरोध नहीं करती, देव ! वे ठीक कहती हैं।

भानुगुप्त फिर तुम क्या कहती हो ?

महादेवी यही कि महाराज को अब अवकाश नहीं मिलेगा। चित्रशाला को बन्द कर दिया जाय। एक सप्ताह से स्वामी उधर जाकर झांके भी नहीं।

भानुगुप्त सच महादेवी ! जब से वह मालव-वीर आया है, मेरा मन करता है कि जैसे मैं उसकी बातें सुनता रहूं।

वह बोलता रहे, बोलता चला जाय। समय रुक जाय पर वह न रुके...

महादेवी उसे शायद चित्रकला से कोई प्रेम नहीं है।

भानुगुप्त मैंने भी उससे यही पूछा था...

महादेवी तब क्या कहा उसने ?

भानुगुप्त कहने लगा, सामग्री ही जब धूलधूसरित हो रही हो तो कोई चित्र कैसे बना सकता है। जो चित्र का विषय है वही आज पादाक्रान्त है...

[महादेवी सहसा चौंकती है, पर क्षणभर बाद गम्भीर होकर कहती है]

महादेवी मालव-सैनिक ने उचित ही कहा, देव ! फिर भी...

भानुगुप्त फिर की बात फिर होगी महादेवी ! अब तो तक्षशिला की करुण गाथा सुनने का अवसर है। वही गाथा जो मालव-सैनिक मुझे सुना चुका है, अब वे भिक्षुणियाँ सुनायेंगी, वे जिन पर बर्बर हूणों ने अत्याचार किये हैं।

[प्रतिहारी का प्रवेश। पूरे बांह का सफेद कंचुक व धोती पहने तथा कमरबन्द बांधे है। सिर पर पगड़ी है]

प्रतिहारी (प्रणाम करता है) महाराज ! तक्षशिला के यात्री द्वार पर उपस्थित हैं।

भानुगुप्त उन्हें आदर से अन्दर लिवा लाओ।

प्रतिहारी जो आज्ञा। (जाता है)

महादेवी मेरा यहां रुकना अनुचित तो न होगा ?

भानुगुप्त नहीं महादेवी ! तुम चाहो तो रुक सकती हो। और चाहो

क्यों, तुम्हें रुकना होगा। तुम्हारी जाति की प्रतिनिधि तो वे हैं।

[प्रतिहारी के साथ काषाय वस्त्रधारी दो भिक्षुणियों का प्रवेश। उनमें एक वृद्धा है, दूसरी युवति। भानुगुप्त और महादेवी आगे बढ़ कर उन्हें प्रणाम करती है। भिक्षुणियाँ आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाती है। फिर महाराज के इंगित पर वे आसन्दियों पर बैठ जाती है। सब एक दूसरे को देखते है। वृद्धा थकी हुई पर शान्त है, लेकिन युवति का मुखमण्डल वेदना और आक्रोश से दीप्त है। महादेवी के नेत्र सहसा उस के नेत्रों से जा मिलते है। उसकी पीड़ा और व्यथा से वह काँप उठती है। हलाहल विष जैसे उसके अन्तर को झुलस देता है। तभी सहसा महाराज बोल उठते है]

भानुगुप्त आप तक्षशिला से आ रही हैं, देवी ?

वृद्धा हाँ सम्राट् ! जो किसी दिन तक्षशिला था वहीं से हम आ रही हैं। यह मेरी साथिन किसी दिन गान्धार के महाविहार की निवासिनी थी। आज वह विश्वप्रसिद्ध विहार खण्डहर बन चुका है।

युवति और उसके निवासियों के रुण्ड-मुण्ड हूणों की ठोकरों में लोट रहे हैं। खोपड़ियों से खेलना उन विदेशियों को बहुत प्रिय है सम्राट् !

वृद्धा और नारी तो उनके मनोरंजन का एक सुन्दर साधन है।

युवति सुरा के साथ सुन्दरी उनके जीवन का आधार है देव ! इसी लिये जब उन्होंने भिक्षुओं के सिर धड़ से अलग

किये तब उन्होंने सब भिक्षुणियों को अपने सैनिकों में बाँट दिया।

वृद्धा — मानो वे लूट में मिले सुन्दर वस्त्र थीं, या मुद्रायें थीं या खाने की सामग्री थीं।

युवति — (आवेश में) नहीं, वे इन सब से बढ़ कर थीं। वे नर की वासना को शान्त करने का साधन थीं। नर की नहीं, हूणों की वासना का, चपटी नाक वाले उन राक्षसों की वासनाका···सम्राट्! मैं इतनी दूर से यही पूछने आई हूँ कि क्या भारत की सन्तान इतनी हीनवीर्य हो गई है कि वह अपनी माँ-बहनों की रक्षा भी नहीं कर सकती? क्या ऐश्वर्य और विलास ने उन्हें बिल्कुल ही अपंग बना दिया है? क्या विद्या और कला, संगीत और चित्रकला की प्रगति का अर्थ मानवता का महानाश है?

[आवेश धीरे धीरे बढ़ कर वाणी को कंपा देता है]

भानुगुप्त — (शान्त स्वर में) देवी! इस प्रकार उत्तेजित न हो। उनके दुःख को मैं समझता हूँ, लेकिन क्या यह सत्य नहीं है कि मिहिरकुल का यह अत्याचार···

युवति भिक्षुणी — (आवेश में) मिहिरकुल का यह अत्याचार अकारण नहीं है, यही कहना चाहते हैं न आप? और शायद यह भी कि बौद्धों ने एक दिन मिहिरकुल को अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करने को उकसाया था और फिर समय आने पर जब उसने विद्रोह का झंडा ऊंचा किया तो वे लोग अपने वायदे से फिर गये। वह हार गया। आज उसी हार का वह बदला चुका रहा है।

भानुगुप्त — देवी ठीक समझी हैं। आज बौद्ध विहार हर कहीं षड्यंत्रों का केन्द्र बन रहे हैं। इसीलिये उनका पतन हो रहा है, लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि···

युवति भिक्षुणी — (सहसा उठ कर आवेश में) इसका आशय स्पष्ट है। अब हमें कुछ नहीं कहना है। हम जाती हैं।

भानुगुप्त — (सहसा) नहीं देवी ! मैंने यही तो नहीं कहा। मैं स्वयं तथागत के मार्ग का प्रशंसक हूँ...

युवति भिक्षुणी — (उसी तरह बिना सुने) हमें यह नहीं मालूम था महाराज कि परम भागवत आर्य समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के वंशधर अब इस प्रकार सोचने लगे हैं। हिन्दू और बौद्धों को एक दृष्टि से देखने वाले सम्राटों पर भी विदेशियों का प्रभाव पड़ गया है। मुझे यह सब नहीं मालूम हो जाता तो मैं यहां क्यों आती, क्यों...

भानुगुप्त — (प्रार्थना) देवि ! देवि ! सुनो तो...

युवति भिक्षुणी — (बिना सुने) क्यों इस पाप को हृदय में सुलगाये फिरती ? क्यों उस विष को अपने प्राणों पर आक्रमण करने से रोके रखती।

[सहसा महादेवी आगे बढ़ कर भिक्षुणी को अपने अंक में भर लेती है]

महादेवी — शान्त ! मेरी बेटी, शान्त !

युवति भिक्षुणी — बेटी...कौन है बेटी ! किसकी बेटी ! मैं... जिसने संसार के मोह-जाल से मुक्ति पाकर तथागत का मार्ग वरण किया था, मैं जिसने वासना के मार्ग को त्याग कर साधना का मार्ग पकड़ा था, मुझे कौन बेटी कहता

है ? मैं बेटी नहीं। मैं नारी हूँ। नहीं, मैं नारी का पिण्डमात्र हूँ। नहीं, नहीं, मैं प्रतिशोध का रूप हूँ। मैं साक्षात् प्रतिशोध हूँ।

महादेवी (तीव्र स्वर) भिक्षुणी ! जिस मोहजाल को तुमने तोड़ना चाहा था उसी का तुम शिकार हो रही हो। यह सब नाटक मोहजाल का प्रभाव है। तुम अपने ही दुःख से पराजित हो गई हो।

[भिक्षुणी सहसा काँप कर महारानी को देखती है]

वृद्धा भिक्षुणी महादेवी ! यह अपने आपे में नहीं है। न जाने इसे...

महादेवी जानती हूँ आर्ये ! मैं जानती हूँ। नारी ही नारी की व्यथा न जानेगी तो कौन जानेगा। पर इस प्रकार...

युवति भिक्षुणी पर इस प्रकार (फुसफुसा कर) पर इस प्रकार -(एकदम) पर इस प्रकार मुझे अपनी भावनाओं का दास नहीं होना चाहिये था। हाँ महादेवी ! आप ठीक कहती हैं, मुझे इस प्रकार अपनी पीड़ा से पराजित नहीं होना चाहिये। मैं मानती हूँ मैं अपनी व्यथा को पी नहीं सकी। पर सम्राट् ! पी लेती तो यहां तक आती कैसे ! वही पीड़ा तो मेरी शक्ति बन कर मुझे यहाँ तक खींच लाई है।

भानुगुप्त देवी की व्यथा मैं समझता हूँ लेकिन...

युवति (अनसुना करके धीमे स्वर में) पर यहां आने की आवश्यकता ही क्या थी ! हाँ, क्या आवश्यकता थी ! यह भी तो मोह था। निस्सन्देह मोह था। मुझे अपनी शक्ति से लड़ना चाहिये था। मुझे स्वयं अपने से युद्ध करना

चाहिये था । मैं...और मैं क्यों, हम सब मोह को जीत कर बढ़ जातीं तो क्या मिहिरकुल की लोलुप सेना हमारी ओर दृष्टि भी उठा पातीं (सहसा दौड़ कर सम्राट् के चरण पकड़ लेती है) सम्राट् ! अपराध हुआ । क्षमा चाहती हूँ । क्षमा कर दो सम्राट् ! मैं अभी लौटूंगी, अभी लौटूंगी और मिहिरकुल से युद्ध करूंगी । हाँ, मिहिरकुल से युद्ध करूंगी । मैं अकेली युद्ध करूंगी और उसे बता दूंगी कि कम से कम एक भिक्षुणी तो ऐसी है जो मरना जानती है ।

भानुगुप्त (गम्भीर स्वर से) भिक्षुणी ! तुमने ठीक समझा, तुम्हें सचमुच युद्ध करना होगा ।

युवति भिक्षुणी (कुछ चकित) हाँ, मैं युद्ध करूंगी । मैं अभी तक्षशिला लौटूंगी ।

भानुगुप्त नहीं, तक्षशिला नहीं । तुम्हें यहीं युद्ध करना होगा ।

युवति भिक्षुणी यहीं !

महारानी हाँ, यहीं !

भिक्षुणी (चकित) समझी नहीं । आप क्या कहना चाहती हैं ?

महादेवी यही कि मानवता सोई पड़ी है, उसे ठोकर मार कर जगाना होगा । उसे बताना होगा दासता मौत है ।

भिक्षुणी देवी...

महादेवी कर सकोगी यह युद्ध ! जगा सकोगी इस प्रदेश को !

युवति भिक्षुणी (एकदम) आप कहना चाहती हैं कि मैं गांव-गांव, कस्बे-कस्बे घूम-घूम कर अपनी व्यथा सबको सुनाती फिरूं ?

महारानी हाँ देवि ! मैं यही कहना चाहती हूँ ।

भानुगुप्त — कर सकोगी ऐसा ? बन सकोगी मेरी विजय-यात्रा की सन्देशवाहिका ? जगा सकोगी सोई हुई भारत की आत्मा को ? क्रोध प्रतिशोध की शक्ति नहीं है, देवी, प्रतिशोध की शक्ति है कर्म ।

युवति भिक्षुणी — सम्राट् ! यह नहीं सोचा था ।

भानुगुप्त — तो क्या सोचा था ?

युवति भिक्षुणी — सोचा था कि अपनी व्यथा आपको सौंप कर प्राणों का विसर्जन कर दूंगी ।

भानुगुप्त — (तीव्र) स्वार्थ, निरा स्वार्थ ! यही स्वार्थ हम सबको खायगा और खाये जा रहा है । भिक्षुणी, अपनी व्यथा किसी को मत दो । उसमें जलो और उसकी लपटों से जो प्रकाश फैले, वही जग को दो, केवल वही ।

वृद्धा भिक्षुणी — सम्राट् ! सम्राट् , आप इतना जानते हैं !

युवति भिक्षुणी — सम्राट् , मेरा आना सफल हुआ । मैं अपने को भूल रही थी । आपने फिर से जगा दिया ।

भानुगुप्त — (मुस्करा कर) देवी ! बहुत जल्दी समझी । व्यथा ने कलुष को धोकर चित्त को पारदर्शी बना दिया । जो कुछ शेष होगा उसको मेरा एक सैनिक दूर कर देगा ।

युवति भिक्षुणी — सैनिक !

भानुगुप्त — हाँ, तुम लोगों के आने से कुछ पूर्व मालव प्रदेश का एक सैनिक भी तक्षशिला से लौटा है । उसने मुझे सब कुछ बता दिया है । एरण के महायुद्ध में उसका पिता वीरगति को प्राप्त हुआ था ।

युवति भिक्षुणी — आप सैनिक यशोधर्मन् की बात तो नहीं कह रहे हैं ?

भानुगुप्त हाँ वही। क्या देवी उससे परिचित हैं ?

वृद्धा भिक्षुणी हाँ महाराज ! उसी वीर सैनिक की प्रेरणा से हम यहां पहुंची हैं। क्या वह भी यहीं है ?

भानुगुप्त हाँ, वह यहीं है और अब मैं उसे जाने भी नहीं दूंगा।

[इसी समय राजमाता के साथ एक युवक का प्रवेश। आयु की अपेक्षा वह युवक जान पड़ता है। उसका शरीर गठा है। अंग अंग जैसे ठुका हो। नेत्रों में अपार विश्वास है, भुजायें जैसे छाया बन कर सब पर छा जायेंगी, विशाल वक्षस्थल, उन्नत ललाट, चलता है तो मानो साहस डग बढ़ाता है। वह कमरबन्द से कसी घुटने तक की धोती और आधी बाँह का कंचुक पहने है। फेटे में कटार खुसी है। बाल रुमाल मे ढके हैं। यही मालव-सैनिक यशो-धर्मन है। उसके पीछे वल्लभी के सेनापति भट्टार्क का पुत्र द्रोणसिंह है। वेश-भूषा में बहुत थोड़ा अन्तर है। धोती नीची है और सिरा आगे खुसा है। सिर केसरी उत्तरीय से ढका है। वीरता उसे पाकर जैसे कृत्यकृत्य हो उठी है। राजमाता अपने पुत्र के अन्तिम वाक्य सुन लेती है। और कहती है—]

राजमाता वह स्वयं जाना नहीं चाहता, बेटा ! लेकिन वह इसका मूल्य मांगता है।

भानुगुप्त मैं उसे मूल्य चुकाने को तैयार हूँ। बोलो सैनिक, क्या चाहते हो ?

[इसी समय भिक्षुणी यशोधर्मन को देखती है। सहसा काँप कर दृष्टि घुमा लेती है। यशोधर्मन गम्भीर स्वर में बोलता है—]

भानुगुप्त — मेरा विचार मिहिरकुल को सूली पर चढ़ाने का है। मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। उसके पाशविक अत्याचारों की बात सोच कर मेरा रक्त अब भी खौल उठता है। अब भी मेरे कानों में करुण चीत्कार और हाहाकार गूंज उठते हैं। जिसने शस्य-श्यामला भूमि को निर्दोष मानवों के रक्त से सींचा, जिसने आर्यों के इस देश को श्मशान बनाया, जिसने मानवता की हत्या की, जिसके कुकृत्यों की गाथा तुम्हारी जैसी निरीह नारियों की आंखों में लिखी है—

आनन्दी — (हर्ष से) सम्राट्।

भानुगुप्त — मैं ऐसे दुरात्मा नीच पशु को सूली से कम दण्ड नहीं दे सकता।

आनन्दी — सम्राट् ने जो उचित था वही किया पर....

भानुगुप्त — पर...!

आनन्दी — पर सम्राट्! यदि आपको अपने निश्चय में परिवर्तन करना पड़े तो....

भानुगुप्त — निश्चय में परिवर्तन! कैसी बातें करती हैं, देवी!

आनन्दी — वैसी ही जैसी सम्भव हो सकती हैं।

भानुगुप्त — पर इस निश्चय में परिवर्तन कौन चाहता है?

आनन्दी — सम्राट् कल्पना कर सकते हैं।

भानुगुप्त — क्या वल्लभी के 'सेनापति द्रोणसिंह कुछ परिवर्तन चाहते हैं?

आनन्दी — नहीं, यह उनके स्वभाव के विरुद्ध है।

भानुगुप्त — तो मालव-वीर यशोधर्मन!

आनन्दी — मालव-वीर यशोधर्मन दयालु होकर भी राजनीति के पण्डित हैं।

भानुगुप्त — माँ ! आप इन अतिथियों को राजमहल में ले चलें ?

राजमाता — आओ देवियो, हम चलें, तुम भी बहू ।

भिक्षुणी — चलिये राजमाता ।

महादेवी — चलो माँ । (सब जाते है)

भानुगुप्त — सेनापति ! सबसे पहले हमें अपने गुप्तचरों को सतर्क कर देना ठीक होगा ।

द्रोणसिंह — निस्सन्देह । मैं उन्हें अभी बुलाता हूँ । (जाता है)

भानुगुप्त — और सैनिक यशोधर्मन ! मालवा के परिव्राजक महाराज के बारे में भी हमें पूरा प्रबन्ध करना होगा । क्या उनसे कोई आशा नहीं है ?

यशोधर्मन — नहीं सम्राट् ! पर एक बार प्रयत्न कर देखने में कोई हानि नहीं है । मैं स्वयं वहां जाने को प्रस्तुत हूँ ।

भानुगुप्त — तुम जा सकते हो सैनिक ! मैं तुम पर विश्वास करता हूँ और सदा करता रहूंगा ।

यशोधर्मन — सम्राट् की कृपा सदा मेरा बल बनेगी और सम्राट् का विश्वास भारत को विद्रोहियों से मुक्त करने में मेरा मार्ग दर्शन करेगा । मैं अभी जाने की आज्ञा चाहता हूँ । न जाने कौन से क्षण का प्रमाद हमारी पराजय का कारण बन जायगा ।

भानुगुप्त — आज्ञा है सैनिक ! तुम्हारे रहते पराजय अब हूणों पर ही कृपा कर सकती है ।

यशोधर्मन — सम्राट् का उत्साह देख कर भविष्य में विश्वास जमता है । प्रणाम करता हूँ सम्राट् ।

भानुगुप्त — जाओ सैनिक ! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो । (यशोधर्मन का जाना । भानुगुप्त कई क्षण उसे जाते देखता है,

फिर विश्वास से भर कर इधर-उधर टहलता फुसफुसाता है।)

भानुगुप्त (स्वगत) तो वह अवसर आ ही गया। हाँ, अब आने में क्या सन्देह है ! कितनी शान से आया है ! जैसे विजय निश्चित हो ! हाँ, विजय निश्चित है। जिस बात का प्रारम्भ इतना उत्साहवर्धक हो उसका अन्त जय में न हो तो अचरज और किसे कहा जायगा !... तो मैं हूणों का पराभव कर सकूंगा, तो मैं गुप्तों की चलायमान राजलक्ष्मी को फिर से स्थिर कर सकूंगा ? परम भागवत आर्य समुद्रगुप्त की मेधा, आर्य चन्द्रगुप्त का कौशल, आर्य स्कन्दगुप्त का विश्वास, क्या यह सब मैं पा सकूंगा ? क्या पा सकूंगा...सेनापति द्रोण और सैनिक यशोधर्मन के विश्वास से मुझे आशा बंधती है और अत्याचार-पीड़ित इन भिक्षुणियों की ज्वाला मेरी इस आशा का सबसे बड़ा बल है, और सच तो यह है कि मिहिर- कुल का यह अत्याचार ही मेरी विजय की रीढ़ बनेगा।

[सहसा दूर कहीं गाने का मधुर, पर ओजस्वी स्वर उठता है और पास आता है । सम्राट् रुक कर उसे सुनते हैं। आश्चर्य, प्रसन्नता और विश्वास की आभा मुख पर उतरती है।]

गीत

स्वर (दूर कोई नारी तन्मय होकर गा रही है)

आज जीवन में नवल आह्लाद फिर आया ।

फिर विजय के गीत हृत्तन्त्री लगी गाने,

लग गया रूठा हुआ विश्वास भी आने,
गहन रजनी में मृदुल आलोक मुस्काया ।
आज जीवन में नवल आह्लाद फिर आया ।

भानुगुप्त कौन...यह कौन गाता है ? कितना मधुर कण्ठ है, कितनी तेजस्वी वाणी है, कितनी दृढ़ता है ? गायिका का विश्वास क्या लौट रहा है यह तो मानवता का विश्वास लौट रहा है। कौन है ! देखूँ तो शायद······ देखूँ चल कर······

(शीघ्रता से जाते हैं—परदा धीरे-धीरे गिरता है।)

दृश्य—२

[एक साधारण नगर के बाहिर, मार्ग से हट कर, एक छोटी सी भीड़ में गरुड़ध्वज लिये एक भिक्षुणी गा रही है। वही प्रथम दृश्य वाली भिक्षुणी है। वही वेश, पर मुख पर अब विश्वास है। व्यथा ने उसे और भी खरा बना दिया है। वह बोलती है मानो सत्य बोलता है। भीड़ में लोग आते हैं, जाते हैं, पर धीरे धीरे वह बढ़ती जाती है।]

भिक्षुणी — नागरिको ! यह सच है कि तुमको इस बात की चिन्ता नहीं है कि तुम पर कौन शासन करता है। तुम कर देना चाहते हो। पर नागरिको ! उसके बदले में रक्षा भी तो चाहते हो ! बोलो नहीं चाहते ?........

जनता — चाहते हैं।

एक जन — कर देने का अर्थ ही यह है कि हम सुख-शान्ति से जी सकें।

दूसरा जन — अगर प्रजा को सुख न मिलेगा तो राजा नष्ट हो जायेगा।

भिक्षुणी — और राजा के साथ तुम भी तो नष्ट हो जाओगे। तुक कैसे बच सकोगे ! आज गुप्त वंश की भाग्य-लक्ष्मी संकट में है। भारत पर विदेशियों का अधिकार होता आ रहा है।

एक जन — आप म्लेच्छों की बात करती हैं ?

दूसरा जन	चपटी नाक वाले वे श्वेत हूण तो अब भारत में ही बस गए हैं।
तीसरा जन	उन्होंने शैव मत स्वीकार कर लिया है।
चौथा जन	वे अब विदेशी नहीं हैं, वे आर्य हैं।
भिक्षुणी	(पूर्ववत् शान्त) निस्सन्देह वे अपने को भारतवर्ष का निवासी मानते हैं, पर उससे क्या होता है? यह सब दिखावामात्र है। एक ढोंग है। वे आर्य-परम्परा के शत्रु हैं। वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नष्ट करने वाले हैं। क्या तुमने कभी सुना कि आर्य-सम्राटों ने अलग-अलग धर्मों में भेद किया हो? क्या देवानांप्रिय सम्राट अशोक बौद्ध होते हुये भी वैष्णव धर्म के संरक्षक नहीं थे? क्या परमभागवत आर्य समुद्रगुप्त परम वैष्णव होते हुये भी बौद्धों से कम प्रेम करते थे? सहिष्णुता और समन्वय क्या हमारी संस्कृति के मेरुदण्ड नहीं हैं? जिसने भी इस मेरुदण्ड पर प्रहार किया क्या वह नष्ट नहीं हो गया? बोलो, क्या ऐसा नहीं है, क्या कुछ असत्य कह रही हूँ? क्या कभी किसी आर्य सम्राट् ने धर्म और जाति के नाम पर मनुष्य-मनुष्य में भेद किया है?
जनता	(आवेश) नहीं, कभी नहीं।
जन १	राजा का किसी के धर्म से क्या सम्बन्ध है?
जन २	राजा का सम्बन्ध प्रजा से है, उसके धर्म से नहीं।
जन ३	आर्य सम्राटों ने कभी इस तरह के भेद की बात नहीं की।

भिक्षुणी — लेकिन मिहिरकुल करता है। वह अत्याचारी कभी बौद्ध था। आज वह पशुपति का उपासक है। वह राक्षस है। वह हाथियों को पर्वत से गिरा कर उनकी चिंघाड़ में रस लेता है। उसी दुरात्मा ने बौद्धों को नष्ट करने का बीड़ा उठाया है। उसने बिहारों की नीव खोद दी है। उसने तथागत की प्रतिमाओं को भ्रष्ट किया है। उसने गान्धार और तक्षशिला के महाविहारों और विद्यालयों को नष्ट कर दिया है। उसने भिक्षुओं को तलवार के घाट उतार दिया है और...

जनता — —ओह····ओह···

भिक्षुणी — उसने भिक्षुणियों को लूट का माल समझ कर उनपर अधिकार कर लिया है और उन पर अनेक अत्याचार किये हैं। हाँ ऐसे अत्याचार किये हैं जो कभी किसी आततायी ने स्त्रियों पर नहीं किये। (भीड़ में कोलाहल उठता है) हूण नारी को केवल निर्जीव पुतली समझते हैं। शराब की बोतल से अधिक उसका मूल्य उनकी दृष्टि में नहीं है।

जन १ — यह बहुत बुरा है।

जन २ — ऐसा तो कभी नहीं सुना था।

जन ३ — हमारा राजा उन्हें निकाल क्यों नहीं देता !

भिक्षुणी — निकालना तो चाहता है पर निकाल नहीं सकता, क्योंकि यह काम एक राजा ही के वश का नहीं है। सब मिल कर प्रयत्न करें तो ऐसा हो सकता है और

	यहाँ सब आपस में लड़ते रहते हैं। सब के सब हूणों के माण्डलिक बनने में गौरव अनुभव करते हैं।
जन १	नहीं, नहीं, उन्हें आपस में मिलना चाहिए।
जन २	उन्हें एक होकर अत्याचारी हूणों को देश से निकाल देना चाहिए।
जन ३	यदि वे भारत में रहना चाहते हैं तो भारतीयों के मित्र बन कर रहें।
भिक्षुणी	उनके रहने पर हमें कोई आपत्ति नहीं है। वे भी भारत की प्रजा बनें···
जन ४	नहीं, नहीं, जो धर्म और नारी पर इस प्रकार अत्याचार करता है उसे भारत में बसने का अधिकार नहीं है, उसे जाना होगा।
समवेत स्वर	हाँ, उन्हें जाना होगा।
	(सहसा कुछ हूण सैनिकों का प्रवेश)
एक हूण सै०	ऐ, ऐ, यह कैसी भीड़ है !
दूसरा हूण सै०	और यह कौन है भिक्खुणी।
पहला हूण सै०	भिक्खुणी ! यह यहाँ क्या कह रही है ? लोगों को भड़का रही होगी।
तीसरा हूण सै०	पकड़ लो इसको। यह यहाँ क्यों आई ? इसे सेनापति के पास ले चलो।
पहला हूण सै०	यह इसी योग्य है।
दूसरा हूण सै०	(जनता से) भागो भागो यहाँ से। इस भिक्खुणी को हम ले जायेंगे।
पहला हूण सै०	और हाँ ! तुम लोगों के पास जो कुछ सोना हो तो वह भी निकाल दो। (सब मौन रहते हैं)

दूसरा हूण सै० क्या बुत बन कर खड़े हो गये हो ? सुनते नहीं !

भिक्षुणी (अट्टहास) ये क्यों सुनेंगे; तुम्हारी बातें तुम्हारा काल सुन रहा है।

पहला सैनिक तुम बोलती हो ! तुम्हारा इतना साहस ! सैनिको, पकड़ लो इस नारी को और उधेड़ दो कोड़ों से इन लोगों की खाल।

भिक्षुणी (उसी तरह) राक्षसो, तुम्हारे कोड़े अब तुम पर ही पड़ेंगे। सावधान, नागरिको आगे बढ़ो...

दूसरा सैनिक ये कुत्ते आगे बढ़ेंगे ! एक एक को दाग दिया जायेगा ।

(कोलाहल उठता है। नागरिक सहसा हूण सैनिकों पर टूट पड़ते हैं। सैनिक भागते हैं।)

नागरिक कुत्ते ! हम कुत्ते हैं ! हाँ ! हम कुत्ते हैं। खूँखार, शिकारी कुत्ते ! ठहरो...भाइयो, आओ तो इन्हें बता दें कि कुत्ते चाटना ही नहीं, काटना भी जानते हैं।

सैनिक अरे रे ! ये तो सचमुच हमला कर रहे हैं, भागो भागो।

(हूण सैनिक सिर पर पैर रख कर भागते हैं।)

नागरिक (अट्टहास) भाग गये....बस यही वीरता है इनकी !

भिक्षुणी हाँ, यही वीरता है। यही वीरता, जब तुम आपस में लड़ते हो, तो तुम्हारा काल बन जाती है। सोचो, कैसे कायर तुम पर शासन करते हैं !

जनता १ नहीं, नहीं, अब ऐसा नहीं होगा।

जनता २ कभी नहीं होगा।

जनता ३ हमारा राजा वही होगा जो वीर है, न्यायी है, उदार है।

भिक्षुणी — गुप्तसम्राट् भानुगुप्त बालादित्य में ये सब गुण उपस्थित हैं। उनकी सहायता से ही तुम इन श्वेत भेड़ियों से मुक्ति पा सकोगे।

जनता — (कई स्वर) हम उनकी सहायता कैसे कर सकते हैं ?

भिक्षुणी — जैसे अब की। हूणों से सहयोग न करना। उन्हें जैसे भी हो नष्ट करना।

जनता — हम तैयार हैं। हम ऐसा ही करेंगे।

भिक्षुणी — तब तुम्हारी जय निश्चित है। भारत की जय निश्चित है। आर्य साम्राज्य की जय निश्चित है। मैं अब जाती हूँ।

[कह कर भिक्षुणी आगे बढ़ जाती है। नागरिक अचरज से उसे देखते हैं, फिर उसके पीछे जाते हैं]

जन १ — कहां ! आप कहां जाती हैं, माँ !

जन २ — आपने हमें जगाया है, आप कैसे जा सकेंगी माँ !

[भिक्षुणी लौटती है]

भिक्षुणी — नागरिको ! अपने अपने स्थान पर लौट जाओ और सबको मेरा सन्देश सुना दो। मैं नहीं रुक सकूंगी। समय कम है और मेरी यात्रा का अन्त अभी दूर है। हूण सेना किसी भी क्षण आक्रमण कर सकती है। तुम्हें तैयार रहना चाहिये। तुम सब स्वयं अपने नेता बनो।

[आगे बढ़ जाती है और ओजस्वी स्वर में गा उठती है]

आज जीवन में नवल आह्लाद फिर आया।
फिर विजय के गीत हृदयतन्त्री लगी गाने,

लग गया रूठा हुआ विश्वास भी आने,
गहन रजनी में मृदुल आलोक मुस्काया,
आज जीवन में···

\+ \+ \+

मैं निराशा की निशानी छोड़ आई हूँ,
सुखद आशा का सुनहला प्रात लाई हूँ,
सुन हँसी मेरी व्यथा का सिन्धु शरमाया,
आज जीवन में···

\+ \+ \+

फिर मुझे कहना मनुज से, जी प्रलय बनकर,
कर प्रबल हुंकार रिपु कांपे सुने जब स्वर,
दे मनुजता की दुखी संसार की छाया।
आज जीवन में नवल आह्लाद फिर आया।

[देर तक उनके गाने का स्वर दूर होता हुआ गूंजता रहता है। जब तक तनिक भी गूंज उठती रहती है, नागरिक स्तब्ध से उसी ओर देखते रहते हैं जिधर भिक्षुणी गई है, फिर जैसे स्वप्न भंग हो जाता है, घबरा कर एक दूसरे को देखते हैं और बिखर जाते हैं।]

[परदा गिरता है]

तीसरा दृश्य

[सन् ५२७, मिहिरकुल की छावनी का दृश्य। एक शिविर में राजसी ठाठ का प्रदर्शन। प्रदर्शन में भयानकता है। इधर उधर अस्त्र-शस्त्र बिखरे हैं। दीवार पर भयानक जानवरों के सिर आदि टंगे हैं। बहुमूल्य ग़लीचों और तोषकों से सज्जित फर्श पर मिहिरकुल बैठा है। युवा है, पर रूप भयानक है। श्वेत वर्ण, कोटरों में धसे हुये कृष्णवर्ण नयन, चपटी नासिका, मोटे ओंठ, विशाल स्कन्ध और बोलता तो है मानो मेघ गर्जता है। उसके बाईं ओर एक तोषक के सहारे एक युवती है। वह चोली, महीन धोती और करधनी पहने है। सिर पर सजी हुई टोपी लगाये है। आभूषणों से लदी है। आर्य मालूम होती है। रूपसी है पर उस रूप में वारवनिता की मादकता है, भार्या की प्रेमिल ज्योति नहीं। नेत्र उसके चमकते हैं। हाथ में मदिरा का पात्र है। महिरगुल अधलेटी अवस्था में दूसरे तोषक के सहारे बैठा है। मुस्करा रहा है। हाथ में उसके भी प्याला है। दाहिनी ओर एक चौकी पर सुरा और सुराही है, परदा उठने पर वह हाथ के प्याले को फेंक देता है और बोलता है—]

मिहिरकुल — नहीं, कुछ नहीं, यह कुछ नहीं, यह सब अच्छा नहीं लगता। वह आगे भागता है और हम पीछे भागते हैं। जब भी उसे पकड़ना चाहते हैं वह आगे भाग जाता है (सहसा हँस कर) भागता है तो लड़ना क्यों चाहता है। आखिर जायगा कहाँ? डरपोक! बुज़दिल!!

युवती — (हँस कर) भाग कर जाता कहां! बस भागता रहेगा। हमारे आर्यभट्ट ने प्रमाणित कर दिया है कि धरती गोल है। सो वह चक्कर काटता रहेगा। कभी आप पीछे, कभी वह पीछे, और सच तो यह है कि दायरे में न आप पीछे न वह पीछे।

मिहिरकुल — (एक दम) चुप रहो। तुम कहना चाहती हो कि वह हमारे हाथ नहीं आयेगा (क्रोध से चीख कर) कैसे नहीं आयेगा! उसे आना पड़ेगा। उसने मेरे खिलाफ़ राजाओं का गुट बनाया है। मैं उन सबको एक साथ कुचल दूंगा, चटनी बना दूंगा।

युवती — (मादकता से) चटनी के स्थान पर शराब बना सको तो कितना सुन्दर हो।

[प्याला फेंक देती है]

मिहिरकुल — (अट्टहास) खूब! तुमने बहुत खूब कहा! उन सबकी शराब निकाल ली जाय तो कितना अच्छा हो (हँसता है)। विचार अच्छा है। तुम्हारी सूझ पर हम खुश हुये। विचार वाकई अच्छा है। शराब के बड़े बरतन में अब से आदमी की लाश

डाली जाया करेगी। सच कहता हूँ, क्या ज़ायकेदार बनेगी वह शराब !

युवती — और यदि अपनी शराब के बरतन में तुम किसी सुन्दर युवती की लाश डालो तो और भी मज़ा आये।

मिहिरकुल — पशुपति की सौगन्ध ! क्या बात कही है तुमने ! वाह वाह ! अब ऐसा ही होगा। हाँ, हाँ, हाँ, कैसी बढ़िया बात है ! (चिल्ला कर) कोई है !

[एक हूण सैनिक का प्रवेश]

सैनिक — हुक्म आलीजहाँ !

मिहिरकुल — इस खूबसूरत युवती को ले जाओ और इसका सिर काट डालो।

(युवती सहसा चीख उठती है)

युवती — आलीजहाँ ! नहीं, आप मेरे लिये नहीं कह रहे। नहीं-नहीं...

मिहिरकुल — ले जाओ और सिर काटने के बाद इसकी लाश शराब के डेग में डाल दो। जब तक वह खत्म न हो जाय वहीं रखो।

युवती — (रोकर) नहीं, नहीं, आलीजहाँ...जहाँपनाह।

मिहिरकुल — (अट्टहास) ले जाओ...घसीट कर ले जाओ। बालों को पकड़ कर घसीटो। (अट्टहास) तुमसे सुन्दर, तुमसे नाज़ुक कौन मिलेगा...अहा हा हहा ..

(सैनिक उसे पकड़ कर घसीटता है। वह चीखती है और मिहिरकुल अट्टहास करता है। चीख उसमें दब जाती है। वह फिर ताली बजाता है। दो सैनिक आते हैं।)

सैनिक — हुक्म आलीजहाँ !

मिहिरकुल — हुक्म ! हुक्म ! हुक्म के बच्चो ! हाथियों का इन्तज़ाम हुआ ।

सैनिक — जी आलीजहाँ ! हाथियों का इन्तज़ाम तो हो गया पर...

मिहिरकुल — पर क्या वे लंगड़े हैं ! लंगड़े हैं ! लंगड़े हाथी लाने को किसने कहा ? अच्छी बात है, उनकी लंगड़ी टाँग के नीचे तुम्हें...

सैनिक — जहाँपनाह, हाथी लंगड़े नहीं हैं । पर यहाँ पास कोई पहाड़ी नहीं है ।

मिहिरकुल — पहाड़ी नहीं है (अट्टहास) बेवकूफ गधे ! पहाड़ी नहीं है तो बना क्यों न ली गई ?

[सैनिक स्तम्भित हो गया है] गधे की माफिक मेरा मुँह क्या देखता है ? तुम लोगों में इतनी भी अक्ल नहीं है । लोगों को मार मार कर उनकी लाशों का पहाड़ बना लो । जो भी मिले उसे मार डालो । शहरों को जला दो, जहाँ कहीं बिहार हों, उनमें आग लगा दो । बौद्धों के सिर काट डालो । औरतों को ... हाँ, हाँ, उन्हें भी मार डालो, पहाड़ बनाने में उनकी भी ज़रूरत होगी । ऐसा ही होगा ।

सैनिक — सच है आलीजहाँ ।

मिहिरकुल — अब तक ऐसा क्यों नहीं हुआ ? हमारे कान हाथियों की चिंघाड़ सुनने को पागल हैं । हम बहरे हुये जा रहे हैं । वह डरपोक बालादित्य है कि भागा चला जा रहा है । भागा चला जा रहा है । जाओ, और हमारे सेनापति को हाज़िर करो ।

सैनिक जो हुक्म आलीजहाँ।

(सैनिकके जाने पर मिहिरकुल अकेला रह जाता है। पहले तो वह प्याला भर कर पी लेता है फिर उसे फेंक कर खड़ा हो जाता है। पैर की ठोकर से कालीन को परे हटा देता है और बड़बड़ाता है।)

मिहिरकुल (स्वगत) भानुगुप्त बराबर पीछे हट रहा है, बराबर पीछे हट रहा है। अवश्य इसमें कुछ राज़ है। कुछ है अवश्य, लेकिन वह भूलते हैं। मिहिरकुल पीछे हटने वाला नहीं है। समुद्र तक उसका पीछा करूंगा, हिमालय पर भी उसे नहीं छोड़ूंगा। आकाश में, पाताल में, पूरब, पच्छम, उत्तर, दक्खन, कहीं भी जायगा मैं उसके पीछे जाऊंगा।...लेकिन...लेकिन ...समझ में नहीं आ रहा, फिर वह बराबर पीछे क्यों हट रहा है। सुना है भारत के बहुत से राजा उसके साथ मिल गये हैं। मिल गये हैं तो लड़ते क्यों नहीं...

(हूण सेनापति का प्रवेश)

हूण सेनापति आलीजहाँ ने मुझे याद फरमाया!

मिहिरकुल हाँ सेनापति! हमें कब तक इस तरह भागते रहना पड़ेगा?

सेनापति मैं खुद नहीं समझ पा रहा जहाँपनाह, लेकिन इतना जानता हूँ कि हूण सेना का उत्साह कम नहीं हुआ है।

मिहिरकुल मैं उत्साह की बात नहीं पूछता। मैं यह सब जानता हूँ, पर सेनापति! क्या तुम नहीं जानते कि हम चारों ओर से दुश्मन से घिरते जा रहे हैं। मुझे हर किसी

	पर शंका होती है। चारों ओर से जैसे कोई अट्टहास कर उठता है। तुम्हें तो याद होगी, वह एरण की लड़ाई !
सेनापति	जहाँपनाह, उसे कैसे भूल सकता हूँ !
मिहिरकुल	तुमने बालादित्य के सेनापति गोपराज को लड़ते देखा था ?
सेनापति	देखा था सम्राट् ! उसको लड़ते देखा था और फिर लड़ते-लड़ते मरते भी देखा था। ग़ज़ब का बहादुर था।
मिहिरकुल	(तिलमिला कर) काश कि यह बालादित्य भी मर जाता। कम्बख्त ने एक बार हमको राजा मान कर बग़ावत की है। इतने राजा इकट्ठे किये हैं, पर वह लड़ता क्यों नहीं ? भागता क्यों जा रहा है ? क्यों हमें इस नीची और सीली ज़मीन पर भगाये लिये जा रहा है ? सेनापति ! तुम हमला क्यों नहीं करते ?
सेनापति	सम्राट् ! हमला किस पर करूँ ? हम जितना आगे बढ़ते हैं उससे कहीं अधिक वह बढ़ जाता है।
मिहिरकुल	क्या यह शर्म की बात नहीं है ? क्या हम उससे तेज नहीं भाग सकते ?
सेनापति	सम्राट् ! यहाँ की ज़मीन बड़ी ख़राब है।
मिहिरकुल	(तेज़) हम कुछ नहीं सुनना चाहते। तुमको शर्म आनी चाहिये। तुम अगर नहीं लड़ सकते तो क्यों न तुम्हें···
सेनापति	(तलवार बजाकर एकदम) जहाँपनाह से किसने कहा कि मैं लड़ना नहीं जानता ?

मिहिरकुल — **जानते हो तो बालादित्य ज़िन्दा क्यों है ? हमें इन बदबूदार जंगलों में क्यों भागना पड़ रहा है ? हम आज युद्ध चाहते हैं । आज यहीं···**

—(सहसा पृष्ठभूमि में शोर उठता है और पास आता है और निरन्तर बढ़ता है ।) **यह कैसा शोर है, क्या है ?**

सेनापति — **मैं अभी देखता हूँ सम्राट् । शायद···**

मिहिरकुल — **शायद बालादित्य आ गया है** (अट्टहास), **तब ठीक है । हमें उसी की ज़रूरत है । जाओ, देखते क्या हो ? घेर लो । पकड़ लो । उसे मेरे पास ले आओ । ज़िन्दा न आ सके तो सिर काट कर ले आओ ।**

(सहसा आर्य सैनिकों के साथ सेनापति द्रोण और यशोर्धमन का प्रवेश, मिहिरकुल और हूण सेनापति सहसा घबराते हैं, फिर तलवार खींचते है)

द्रोणसिंह — **सावधान हूण ! तुम्हारा काल आ पहुँचा है । अपना सिर सम्भालो ।**

यशोधर्मन — **किसका सिर काट लाने की आज्ञा दे रहे थे ? लो हम अभी काटे देते हैं ।**

सेनापति — **ज़बान संभाल कर बोलो सिपाही ।**

यशोधर्मन — (हँस कर) **सिपाही ज़बान नहीं तलवार संभालता है । आ जाओ ।**

मिहिरकुल — **सेनापति, क्या देखते हो ? काट कर टुकड़े कर दो इस मुँहज़ोर के ।**

सेनापति — **ठहर सिपाही । ले वार संभाल ।** (वार करता है)

द्रोणसिंह — (मिहिरकुल से) **और तू भी ले ।** (वार करता है)

मिहिरकुल — तो आजा। मैं तुम्हारी बाट देख रहा था। कहां है वह बाग़ी बालादित्य।

(मिहिरकुल द्रोणसिंह पर वार करता हैं, सेनापति यशोधर्मन पर, सैनिक देखते है)

द्रोण — (लड़ते लड़ते) सम्राट् बालादित्य वहीं है जहां उन्हें होना चाहिये।

मिहिरकुल — (लड़ते लड़ते) सम्राट्! हमारे रहते कौन बन सकता है। तुम से निबट लूं तब उसे देखूंगा। ले।

द्रोण — ले।

(एक ओर सेनापति और यशोधर्मन दूसरी ओर द्रोण और मिहिरकुल! घोर युद्ध! बाहर का शोर पास आता है। भागो भागो की आवाजें तेज़ होती हैं)

यशोधर्मन — सुन रहे हो सेनापति? तुम्हारी सेना भाग रही है।

सेनापति — (वार बचा कर) अभी देखना कौन भागता है।

यशोधर्मन — देखना क्या, देख रहा हूँ (वार करके) ले तू भी चल

(सहसा सेनापति गिर पड़ता है, फिर उठ कर भागता हैं पर सैनिक पकड़ लेते हैं)

यशोधर्मन — (अट्टहास) भागना चाहता है। हा! हा! हा! भागना हूणों का धर्म है।

द्रोणसिंह — पर मैं सम्राट को भागने का कष्ट नहीं दूंगा। (वार करके) लो सम्राट् संभालो, तुम गये।

मिहिरकुल — (चीख़कर) आ...आ...आ... (गिरपड़ता है)

द्रोणसिंह — गिर पड़े हूणसम्राट्। इतनी जल्दी। सैनिको, सम्राट् को उठा कर पूरी प्रतिष्ठा के साथ मगध सम्राट् के शिविर में ले चलो। इनके घावों की पट्टी तुरन्त होनी चाहिये।

यशोधर्मन — और सेनापति को भी वही आदर देना जो हमारे सेनापति को मिलता है।

(सैनिक आगे बढ़ते है कि तभी अनेक सैनिकों से घिरे सम्राट् आ जाते है। जय जयकार हो रही है)

समवेत स्वर — परम भागवत गुप्त सम्राट् भानुगुप्त बालादित्य की जय! आर्य साम्राज्य की जय!

भानुगुप्त — आर्य द्रोणसिंह की जय! सैनिक यशोधर्मन की जय!! आर्य सेना की जय!!!

द्रोणसिंह — सम्राट् उदार हैं। उसी उदारता के कारण आज आर्य साम्राज्य की रक्षा हुई है। हूणसम्राट् चरणों में उपस्थित है, महाराज।

यशोधर्मन — आपसे मिलने को ये बहुत व्याकुल थे।

भानुगुप्त — क्षमा करें हूण सम्राट्! आपसे इस प्रकार मिलना हुआ। कल राजसभा में फिर मिलेंगे। सैनिको! हूण सम्राट् को आदर के साथ ले जाओ।

(सैनिक हूण सम्राट् और सेनापति को ले जाते हैं। सम्राट् बालादित्य और सब लोग दूसरी ओर से जाते हैं। पृष्ठभूमि में जयनाद उमड़ता है, परदा धीरे-धीरे गिरता है।)

चौथा दृश्य

[सम्राट् बालादित्य का शिविर। सुविधा के लिये तीसरे दृश्य के मिहिरकुल के शिविर में कुछ परिवर्तन किया जा सकता है। शेष व्यवस्था वैसी ही हो सकती है। फर्श के अतिरिक्त यहां ८-१० आसन्दियाँ रखी जा सकती हैं, जैसे पहले दृश्य में है। परदा जब उठता है तो वहां केवल सम्राट् बालादित्य दिखाई देते हैं। शान्त और प्रसन्न वे वक्ष पर हाथ बाँधे इधर से उधर, उधर से इधर घूम रहे हैं। परदा पूरा उठ जाता है तो वे ग्रीवा उठा कर देखते हैं और एक क्षण बाद उच्छ्वासित स्वर में बोल उठते हैं।]

भानुगुप्त (स्वगत) **मेरा स्वप्न पूरा हो गया। परमभागवत आर्य चन्द्रगुप्त ने जिस प्रकार शकों का नाश किया था, जिस प्रकार आर्य स्कन्दगुप्त ने हूण-सम्राट् खिंगल का पराभव किया था, उसी प्रकार मैंने मिहिरकुल की रीढ़ तोड़ दी। कल जब मैंने माँ से जाकर कहा—'माँ, तुम्हारे आशीर्वाद से मैं विजयी हुआ। गुप्त वंश की रूठी हुई राज्यलक्ष्मी प्रसन्न हो गई।' तो डबडबाई आंखों से उन्होंने मेरा स्वागत किया। वैसे ही जैसे महादेवी देवकी ने आर्य स्कन्द-गुप्त का किया था। फिर वे कई क्षण मौन रहीं। उसके बाद पूछा, 'मिहिरकुल के बारे में क्या सोचा है बेटा।' मैने कहा—'मुझे हूणों का विश्वास नहीं।**

मैं उसे सूली पर चढ़ाऊँगा। 'माँ तब हंस कर रह गई। वह हंसी—वह हंसी—क्या बताऊं वह हंसी कैसी थी! अनुभव-वृद्ध उन नयनों में न जाने उस क्षण तरल सा वह क्या चमक उठा कि मेरा दिल भीग गया।

[भिक्षुणी का प्रवेश]

भिक्षुणी सम्राट्!

भानुगुप्त (चकित) कौन! ओह देवी आनन्दी! आओ देवी, यहां पधारो। यहां।

(आगे बढ़ कर आसन्दी की ओर संकेत करता है)

आनन्दी ठीक है सम्राट्। मैं बैठने नहीं आई। मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं।

भानुगुप्त समझा देवी। आज्ञा कीजिए।

आनन्दी मैं यह जानना चाहती हूँ कि क्या सम्राट् को वह दिन याद है जिस दिन मैं पहली बार आपसे मिली थी।

भानुगुप्त उस दिन को कैसे भूल सकता हूं, देवी! आपकी व्यथा और पीड़ा ने ही तो गुप्तों की खोई हुई शक्ति को जगाया है। आपने जिस प्रकार इस प्रदेश में जीवन फूंका है...

आनन्दी (एकदम बीच में) वह तो हुआ, सम्राट्। पर मैं जानना चाहती हूँ उन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आपने उन अत्याचारी हूणों के बारे में क्या सोचा?

भानुगुप्त जो चाहिये, वही।

आनन्दी अर्थात्—

भानुगुप्त — तो और कौन है ?

आनन्दी — (क्षणिक मौन) सम्राट् क्रुद्ध तो न होंगे।

भानुगुप्त — देवी कैसी बातें करती हैं !

आनन्दी — तब सुनिये सम्राट् ! राजमाता उस दण्ड में परिवर्तन चाह सकती है।

भानुगुप्त — (कांप कर) राजमाता...!

आनन्दी — हाँ सम्राट् !

भानुगुप्त — नहीं देवी, ऐसा नहीं हो सकता। आपको भ्रम हुआ है। जिस राजमाता ने मुझे युद्ध की प्रेरणा दी, वह उस अत्याचारी के लिये दया का प्रयोग करने को कहेगी !

आनन्दी — हाँ सम्राट्, कहेगी। इसीलिए तो मैं आई हूँ। राजमाता को राज्य जाने का दु:ख था। उसी कारण उन्होंने आपको युद्ध के लिये उकसाया, पर आखिर वे हैं तो नारी।

भानुगुप्त — नारी तो तुम भी हो।

आनन्दी — नहीं सम्राट् ! मैं नारी नहीं हूं। मेरा नारीत्व जा चुका है। मैं नारी की लाशमात्र हूँ। प्रतिशोध की अग्नि उस लाश को आज तक जीवित रखे है। मैं प्रतिशोध चाहती हूँ, प्रतिशोध।

भानुगुप्त — शांत भिक्षुणी, शांत !

आनन्दी — भिक्षुणी तो गान्धार के महाविहार में मर चुकी, सम्राट् ! मैं तो नारी और भिक्षुणी की प्रतिहिंसा का रूप हूँ। मैं समस्त हूण जाति की मृत्यु चाहती हूँ, सम्राट् ! मैं उनकी नारियों को तड़पते देखना चाहती हूँ। मैं उनको उसी प्रकार बंटते देखना चाहती हूँ...

भानुगुप्त — देवी ! इस प्रकार उत्तेजित होना असंयम का लक्षण है। मैं अत्याचारी को दण्ड देने की बात समझ सकता हूँ, पर जो अत्याचार हूण करते रहे हैं वे हम भी करें, यह तर्क में कभी नहीं मान सकता।

आनन्दी — (काँप कर) सम्राट् क्षमा करें। मैं सीमा से बढ़ गई थी।

भानुगुप्त — आपकी स्थिति में यह स्वाभाविक है, देवी ! आप राजमाता की बात कह रही थीं। क्या आप उनके व्यवहार के लिये कोई कारण दे सकती हैं ?

आनन्दी — दे सकती हूँ, सम्राट्।

भानुगुप्त — मैं जानना चाहूँगा।

आनन्दी — सम्राट्। आज सवेरे की बात है। जिस समय मैं राजमाता से मिलने गई तो उस समय वहां मैंने मिहिरकुल की पत्नी को देखा।

भानुगुप्त — (हंसकर) वह तो मैं जानता हूँ, वह दया की भीख माँगने गई थी। बस यही बात थी न ?

आनन्दी — सम्राट् ! पूरी बात सुन लेंगे तो।

भानुगुप्त — हाँ, हाँ, सुन रहा हूँ। तो आर तुमने वहां क्या देखा ?

आनन्दी — मैंने उस हूण-नारी को राजमाता के चरण पकड़ते और अपने पति के प्राणों की भीख माँगते देखा।

भानुगुप्त — सुन्दर ! इस पर राजमाता ने क्या कहा ?

आनन्दी — राजमाता ने कहा—राजकाज में नहीं चलाती, मेरा बेटा चलाता है।

भानुगुप्त — ठीक कहा, माँ ने बिल्कुल ठीक कहा। फिर !

आनन्दी — फिर वह बोली—'आप अपने बेटे से मुझे मेरे मालिक के प्राणों की भीख देने को कहें। वे आपको मना नहीं करेंगे।' इस पर राजमाता, न जाने क्या

हुआ, आवेश में आ गईं और हूणों ने हम लोगों पर जो अत्याचार किये थे उनका वर्णन करने लगीं। उन्होंने मुझे उसके सामने खड़ा करके कहा—'क्या यह नारी नहीं है ! क्या इसके सतीत्व का कोई मूल्य नहीं है ? क्या तेरे हूणों ने इस पर और इसकी लाखों बहनों पर पाशविक अत्याचार नहीं किये हैं ? क्या वे उस जघन्य पाप से इसीलिये बरी किये जा सकते हैं कि उनके भी माँ और बहनें हैं ?'

भानुगुप्त — माँ ने इतना कुछ कहा और उस पर तुम कहती हो कि वे दण्ड में परिवर्तन की माँग करेंगी।

आनन्दी — हाँ सम्राट् ! मैं ठीक कहती हूँ । आप सुनें। जब राजमाता ने उस हूण नारी की इस प्रकार भर्त्सना की तो वह लज्जा और व्यथा से धरती में गड़ गई। कई क्षण तक बोल न सकी । चुपचाप उठी और लौट चली। द्वार पर पहुंच कर एक क्षण रुकी और बोली—'यह सब तो मैं जानती थी राजमाता ! और आपकी बात भी सच है। मुझे यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं था, फिर भी मन नहीं माना। सोचा—भारत के आर्य उदार होते हैं और विशेष कर आर्य-नारी तो क्षमा का रूप है । इसी लालच से चली आई थी। जाती हूँ जो होगा, भुगतूंगी......

भानुगुप्त — यह कहा उस हूण नारी ने ?

आनन्दी — हाँ, सम्राट् ?

भानुगुप्त — तब राजमाता ने क्या कहा !

आनन्दी — कुछ नहीं कहा। केवल उसको जाते देखती रही और

जब वह चली गई तो राजमाता की आँखों में जल उमड़ आया।

भानुगुप्त — जल उमड़ आया!...जल उमड़ आया...

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी — सम्राट् की जय हो। सेनापति द्रोणसिंह और महामंत्री सम्राट् के दर्शनों की आज्ञा चाहते हैं।

भानुगुप्त — आने दो।

प्रतिहारी — जो आज्ञा! (जाता है)

भानुगुप्त — (पूर्वतः) जल उमड़ आया, इसका अर्थ है...इसका अर्थ है...

आनन्दी — इसका अर्थ स्पष्ट है, सम्राट्! राजमाता आपसे उस दुरात्मा के लिये क्षमा याचना करेंगी। वे महामात्य के पास गई हैं।

भानुगुप्त — माँ महामात्य के पास गई हैं।

आनन्दी — हाँ, सम्राट्! वे उन्हें अपने पक्ष में कर लेना चाहती हैं।

भानुगुप्त — समझता हूँ देवी! समझता हूँ, लेकिन मैं उसे क्षमा नहीं करूंगा। कभी नहीं करूंगा...मैं उसे सूली पर चढ़ाऊँगा...

आनन्दी — यह आपका अन्तिम निर्णय है!

भानुगुप्त — हाँ, देवी!

[सेनापति द्रोणसिंह, महामात्य और मालव सैनिक के साथ अन्य राजसभासदों का प्रवेश। वे सब अभिवादन करते हैं।]

द्रोणसिंह — महाराज की जय हो!

यशोधर्मन — आर्य सम्राट् की जय हो ! (सब लोग इसी तरह करते हैं)

भानुगुप्त — पधारिये, सब लोग इधर पधारिये ।

[सम्राट् स्वयं बैठते हैं और फिर आगन्तुक सभासद । भिक्षुणी भी बैठती है ।]

भानुगुप्त — (सेनापति द्रोणसिंह से) मैं आपकी राह देख रहा था सेनापति ! हूण सरदार के बारे में आप लोगों ने क्या सोचा ?

द्रोणसिंह — उसी की चर्चा हम लोग करने आये थे । सम्राट् जानते हैं कि मगध की सत्ता को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक निश्चित और सुदृढ़ नीति का पालन करना ठीक है । माण्डलिक नरेश तभी वश में रह सकते हैं जब केन्द्र की शक्ति दृढ़ हो । राजनीति हृदय की कोमल भावनाओं के सहारे आगे नहीं बढ़ती ।

महामात्य — सेनापति भूलते हैं । परमभागवत आर्य समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त ने इन्हीं कोमल भावनाओं के प्रयोग से गुप्त वंश की राज्य-लक्ष्मी की स्थापना की थी । आर्य स्कन्दगुप्त ने सदा हृदय को सर्वोपरि माना ।

यशोधर्मन — महामात्य क्षमा करें, यदि आर्य स्कन्दगुप्त हृदय की गरिमा को कुछ कम कर पाते तो सम्भवतः आज यह दिन न देखना होता । वह महावीर सदा हृदय से छला गया ।

महामात्य — और इसी लिये मानवता की रक्षा कर गया ।

आनन्दी — सम्राट् ! राज्यव्यवस्था के लिये जिस मानवता की ज़रूरत होती है वह साधारण मानवता से भिन्न होती

है। (राजमाता का प्रवेश)

राजमाता — क्या कहा तुमने, देवी ! क्या मानवता के भी भेद होते हैं ?

आनन्दी — होते हैं, राजमाता ! वह प्रतिक्षण परिवर्तित होती है।

राजमाता — नहीं, आनन्दी नहीं। यह क्षणिकवाद मानवता पर लागू नहीं होता। मानवता सदा एक है, सदा एक-रूप है, बेटी !

आनन्दी — लेकिन राजमाता ! उसे राजनीति में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है।

राजमाता — क्या राजनीति का सम्बन्ध मानव से नहीं है ?

आनन्दी — लेकिन···

राजमाता — मैं पूछती हूँ, क्या राजनीति का सम्बन्ध मनुष्य से नहीं है ?

आनन्दी — हाँ, मनुष्य से नहीं है।

राजमाता — फिर किससे है ?

आनन्दी — मनुष्यों से है। (सभा में प्रशंसासूचक ध्वनि)

सेनापति द्रोण — देवी राजनीति की गहराई को समझती है।

यशोधर्मन — न समझती तो आज विजय हमारे चरण न चूमती।

राजमाता — भूलते हो मालव सैनिक ! यह विजय राजनीति की विजय नहीं है, कराहती हुई मानवता की प्रतिक्रिया है।

[सभा में सन्नाटा छा जाता है]

महामात्य — राजमाता ठीक कहती हैं। राजनीति तो हम लोगों का अस्त्र है, परन्तु धर्म तो मानवता ही है।

यशोधर्मन — (आवेश) यदि हमारा धर्म मानवता है तो हमें गेरुए वस्त्र धारण करके किसी विहार में तपस्या करनी चाहिए।

भानुगुप्त — शान्त मालववीर ! गेरुए धारण करने का अर्थ राजनीति से भागना नहीं है। आचार्य चाणक्य ने गेरुए वस्त्र पहन कर ही साम्राज्य की स्थापना की थी।

राजमाता — लेकिन वह साम्राज्य कितने दिन टिक सका ? इसी तरह आर्य चन्द्रगुप्त के वंश में राज्यलक्ष्मी स्थिर नहीं रही। आज भी हालत बहुत अच्छी नहीं रही। यह न समझो मैं इस विषय के महत्त्व को नहीं समझती। मैं सब समझती हूँ बेटा ! इसीलिये कहती हूँ कि हूण सरदार को क्षमा कर दें।

भानुगुप्त — माँ, यह कैसे हो सकता है ?

द्रोणसिंह — राजमाता, हूण सरदार को क्षमा !

यशोधर्मन — ज़ालिम हत्यारे मिहिरकुल को क्षमा !

महामात्य — हाँ क्षमा ! राजमाता ठीक कहती हैं। उसे क्षमा करने में ही राजनीति का कल्याण है। आज गुप्त साम्राज्य के पास वह शक्ति कहां है जो परमभागवत आर्य समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त या स्कन्दगुप्त के पास थी। कहां हैं वे साधन जो तमाम अन्तर्वेद को संगठित रख सके। कहां है वह एकता और सद्भाव जो एक केन्द्रीय सत्ता का बल बन सके। पंचनद प्रदेश अब भी हूणों के हाथ में है। क्या हम उसे ले सकते हैं ? मालव और सौराष्ट्र की स्थिति डावाँडोल है। वाकाटक साम्राज्य और कादम्बर राज शत्रु न होकर भी मित्र नहीं हैं। छोटी छोटी शक्तियाँ स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न कर रही हैं।

आनन्दी — ठीक है महामात्य ! आप ठीक कहते हैं। देश की

यही अवस्था है और इसी अवस्था को देखते हुये क्या यह आवश्यक नहीं कि है हाथ में आये इस शत्रु का बीज नाश कर दिया जाय ?

महामात्य मिहिरकुल को सूली चढ़ाने से उसका नाश नहीं वह प्रबल होगा, देवी !

आनन्दी तो किस तरह होगा माहामात्य ? क्षमा कर देने से ?

महामात्य हाँ देवी, क्षमा करके उसको पंचनद प्रदेश भेज देने से।

सेनापति द्रोण महामात्य ! आपका मतलब है कि वह वहां से फिर आक्रमण नहीं करेगा।

यशोधर्मन नहीं, मैं उसका विश्वास नहीं कर सकता।

भानुगुप्त महामात्य शायद राजनीति के अस्त्र का प्रयोग करना चाहते हैं।

महामात्य सम्राट् ने ठीक समझा। पता लगा है, वहां पर मिहिरकुल के छोटे भाई ने अधिकार कर लिया है। मिहिरकुल को यदि वहां जाने दिया जाय तो बहुत सम्भव है कि दोनों भाई लड़ मरें। कम से कम तब उसे पंचनद प्रदेश के इस ओर मुँह करने का अवसर नहीं मिलेगा।

आनन्दी लेकिन यदि उसे सूली पर चढ़ा दिया जाय तो···।

महामात्य तो देवी ! हमें पंचनद प्रदेश से हूणों के एक और आक्रमण के लिये तैयार रहना चाहिये।

[सभा में प्रशंसा के स्वर]

राजमाता महामात्य ने समस्या को सुलझा दिया है।

भानुगुप्त (स्वगत) महामात्य का तर्क प्रबल है। मेरा मन डावाँ-डोल हो रहा है। (प्रकट) मैं जानना चाहता हूँ क्या किसी को इस बारे में कुछ और कहना है।

आनन्दी — सम्राट् ! मैं राजनीति नहीं जानती। मैं इस प्रबल तर्क का कोई उत्तर भी नहीं दे सकती। परन्तु सम्राट्, मैं इतना अवश्य जानती हूँ कि मिहिरकुल को क्षमा करना उचित नहीं है। वह इस पराजय को नहीं भूलेगा। वह प्रतिशोध लेगा, अवश्य लेगा। उसको क्षमा करके सम्राट् अपने नाश का बीज बो रहे हैं। कहे जाती हूँ, यह क्षमा वीरता का नहीं, कायरता का प्रमाण है, आप सबकी कायरता का...।

[कहती-कहती तेज़ी से बाहर चली जाती है। सब चकित, स्तम्भित उसे जाते देखते हैं। यशोधर्मन उसके पीछे जाना चाहते हैं।]

यशोवर्धन — ठहरो, भिक्षुणी ठहरो।

भानुगुप्त — उसे जाने दो मालव-सैनिक ! वह अब भिक्षुणी नहीं है, नारी है। उस जैसा पीड़ा हमको भुगतनी पड़ती तो शायद हम भी ऐसा ही करते।

यशोवर्धन — ठीक कहते हैं। लेकिन मिहिरकुल को क्षमा करना मैं भी उचित नहीं समझता। यदि...

भानुगुप्त — ठहरो वीर सैनिक ! हूण सरदार के भाग्य का निर्णय करने से पूर्व मुझे तुमसे कुछ और कहना है।

यशोवर्धन — क्या कहना है सम्राट् ! आज्ञा कीजिए।

भानुगुप्त — सैनिक ! मालव में अभी तक अशान्ति है। मैं चाहता हूँ उस प्रदेश का भार तुम संभालें।

यशोवर्धन — (चकित) लेकिन सम्राट् ! मैं...मैं ..

राजमाता — मालववीर ! जिसे तुम प्रसाद समझ रहे हो वह बहुत बड़ा भार है। उसे उठाने से इन्कार न करो।

यशोवर्धन (तलवार निकाल कर) भार उठाने के लिये मैं सदा प्रस्तुत हूँ।

भानुगुप्त मुझे तुमसे यही आशा थी। दशपुर को केन्द्र बना कर तुम मालवा से हूणों को निकाल सकते हो।

यशोवर्धन मैं प्रस्तुत हूँ, सम्राट्!

भानुगुप्त और सेनापति द्रोण!

द्रोणसिंह आज्ञा सम्राट्!

भानुगुप्त तुम भी कुछ भार उठाओगे?

द्रोणसिंह मैं और मेरे पुरखे सदा गुप्त वंश के सेवक रहे हैं, सम्राट्!

भानुगुप्त सेवक नहीं, द्रोणसिंह! सहायक कहो। हम चाहते हैं कि तुम अब सौराष्ट्र का भार संभाल लो। हूण वहां रह सकते हैं पर प्रजा बन कर। राजा तुम होंगे। आज से तुम्हारा विरुद सेनापति के स्थान पर राजा का होगा। हम स्वयं तुम्हारा अभिषेक करेंगे।

[साधु साधु के स्वर उठते हैं]

द्रोणसिंह सम्राट्!

भानुगुप्त ठीक है, सेनापति! आज जो विपत्ति दूर हुई है उस से हमें अधिक प्रसन्न नहीं होना चाहिए। अपनी शक्ति को इकट्ठा करना राजनीति का एक गुर है।

द्रोणसिंह (तलवार निकाल कर) मगध सम्राट् विश्वास रखें, मैत्रकों का राजवंश सदा उनका सेवक रहेगा।

भानुगुप्त हमें यही आशा है। (महामात्य से) महामात्य! अब मिहिरकुल को उपस्थित करो।

महामात्य जो आज्ञा सम्राट्! अभी उपस्थित करता हूँ।

(जाता है। भिक्षुणी फिर आती है पर अब उसके वस्त्र

बदल गये है। काषाय के स्थान पर उसने साधारण नारी के बस्त्र पहने हैं—पूरीबाँह का कंचुक. घघरी और चादर। सब उसे अचरज से देखते हैं।)

भानुगुप्त — **कौन देवी आनन्दी! यह क्या? यह कैसा वेष!**

आनन्दी — **क्षण भर पहले आक्रोश की ज्वाला में जल रही थी, सम्राट्! उसी का यह प्रायश्चित है। तथागत के धर्म का अपमान मिहिरकुल कर सकता है, मैं नहीं कर सकती। मैं नारी हूँ, अभी तक अपने को नहीं जीत सकी। जब तक जीत सकूं तब तक इसी वेश में अलख जगाती फिरूंगी।**

भानुगुप्त — **देवी आनन्दी को भावनाओं पर मुझे गर्व है। उनसे मगध की राजशक्ति गौरवान्वित है। लेकिन आनन्दी! वेश तो शरीर का आवरण है, परिवर्तन हृदय का होता है। थोड़ा रुको, मिहिरकुल आने वाला है। उसे क्षमा कर सको तो...**

आनन्दी — **क्षमा कर पाती तो भिक्षुणी को हत्या क्यों करती सम्राट्! और आप भी क्षमा कहां कर रहे हैं? राजनीति से दूषित वह क्षमा क्षमा का उपहास है सम्राट्!**

राजमाता — **आनन्दी! यह संयोग की बात है, नहीं तो...**

(महामात्य के साथ बन्दी मिहिरकुल का प्रवेश। सशस्त्र सैनिक उसे घेरे हैं। अन्दर आकर वे अभिवादन करके एक ओर खड़े हो जाते हैं। महामात्य आगे बढ़ते है और मिहिरकुल सिर झुकाता है।)

महामात्य — **आर्य सम्राट्। हूण सरदार मिहिरकुल उपस्थित है। सम्राट् को प्रणाम करो, मिहिरकुल।**

मिहिरकुल — **बन्दी के प्रणाम का कोई मूल्य नहीं है, महामात्य!**

भाग्य का खेल है, कल तुम्हारे सम्राट् मेरे अधीन थे, आज मैं उनका कैदी हूँ। कौन जानता है कल को क्या होगा ?

भानुगुप्त इतना जान कर भी तुम प्रजा पर राक्षसों को लजाने वाला अत्याचार करते रहे हो।

मिहिरकुल सम्राट् ! अत्याचार की बात मैं नहीं जानता। बौद्धों ने मेरे साथ विश्वासघात किया है और विश्वासघात का दण्ड जो कुछ भी दिया जाय वह थोड़ा है।

भानुगुप्त मिहिरकुल ! उधर देखो उस नारी को। (आनन्दी की ओर इशारा करता है) उसने तुम्हारे साथ क्या विश्वासघात किया ! उस जैसी साध्वियों पर तुमने जो भीषण अत्याचार किये, उन्होंने तुम्हारे साथ क्या विश्वासघात किया था ? उन मासूम बच्चों ने, उन अशक्त वृद्धों ने...

मिहिरकुल सम्राट्, भावनाओं और आवेगों के वश में होना हूणों ने नहीं सीखा है। वे शासन करना जानते हैं। और शासन होता है शक्ति से। प्रेम की दुहाई ढोंगी दिया करते हैं, फिर बौद्ध धर्म का उन्मूलन तो मेरा व्रत है। उस व्रत को पूरा करना चाहता हूँ, साधनों की परीक्षा करना नहीं।

भानगुप्त ठीक है, मेरा काम भी तुम से प्रतिशोध लेना है। मैं भी साधनों की चिन्ता नहीं करूंगा। मैं तुम्हें सूली पर चढ़ाऊँगा।

[सब चकित हो कर सम्राट् की ओर देखते हैं।]

मिहिरकुल (काँप कर) सम्राट् !

भानुगुप्त (हंस कर) क्यों, काँप उठे...

मिहिरकुल (संभल कर) हाँ सम्राट् । मैं काँप उठा । लेकिन वह क्षणिक था । मैं अब नहीं काँपूंगा । मैं सूली पर चढ़ूंगा । वह मेरे लिये गौरव का क्षण होगा ।

भानुगुप्त गौरव का क्षण ! हूण सरदार, इसी गौरव के क्षण से मुक्ति पाने के लिये तुम्हारी पत्नी मेरे कैम्प में मेरी माँ से तुम्हारे प्राणों की भीख मांगने आई थी !

मिहिरकुल वह नारी की बात है । नारी दुर्बल होती है ।

राजमाता हूण सरदार ! क्या तुमको जन्म देने वाली तुम्हारी माँ भी दुर्बल थी ।

मिहिरकुल हाँ राजमाता ! दुर्बल थी । नारी की दुर्बलता ही उसे माँ बनाती है ।

भानुगुप्त मिहिरकुल !

मिहिरकुल मैंने कुछ ग़लत कहा, सम्राट् । मैं मौत को स्पष्ट देख रहा हूँ । मैं झूठ नहीं बोल सकता ।

भानुगुप्त मिहिरकुल ! तुम्हें मौत नहीं मिलेगी ।

मिहिरकुल (काँप कर) क्या ?

भानुगुप्त हाँ, मैं तुम जैसे पापी और अत्याचारी को शहीद नहीं बनने दूंगा । मैं तुम्हें कुत्ते की मौत मरने का अवसर दूंगा । मैं तुम्हें क्षमा करूंगा ।

[सब लोग और भी चकित होते हैं ।]

मिहिरकुल सम्राट्!...मुझे क्षमा, मुझे क्षमा, मुझे आप क्षमा करेंगे ?

भानुगुप्त हाँ, तुम्हें क्षमा मिलेगी और उसके साथ मिलेगा पंचनद प्रदेश का राज्य । महामात्य ! मिहिरकुल को ले जाओ और पंचनद प्रदेश की सीमा तक पहुँचाने का प्रबन्ध कर दो ।

महामात्य — जो आज्ञा।

(सैनिक हूण सरदार को घेर कर चलते हैं। पर वह मुड़ कर कुछ कहना चाहता है। आनन्दी उसे एकटक देखती है। वह सहसा मुड़ कर चल पड़ता है पर फिर लौटता है और कहता है

मिहिरकुल — आर्य सम्राट्! जा रहा हूँ। यह नहीं सोचा था। अब भी नहीं सोच पा रहा कि यह वास्तव में क्षमा है या दण्ड, पर जो कुछ भी हो मुझे इसे स्वीकार करना पड़ेगा। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इस क्षमा का पूरा उपयोग करूंगा। प्रणाम करता हूँ सम्राट्!

[झुक कर प्रणाम करता है और तेज़ी से चला जाता है। सब लोग देखते रह जाते हैं और परदा गिरने लगता है। तभी आनन्दी जाग कर बोल उठती है।]

आनन्दी — सम्राट्! मैंने भी यह नहीं सोचा था। बड़ी चतुरता से आपने न्याय किया है। लेकिन कुछ भी हो, यह क्षमा आपको महँगी पड़ेगी।

द्रोणसिंह — देखा जायगा।

यशोवर्धन — (तलवार खींचकर) आनन्दी! यह अच्छा ही हुआ। मेरी तलवार अभी प्यासी है। मैं आज हूणों का सर्वनाश करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि हूणों को इस देश से निकाल बाहर करूँगा। आर्य सम्राट् की जय हो!

समवेत स्वर — आर्य सम्राट् की जय हो!

भानुगुप्त — मालव वीर यशोधर्मन की जय हो!

आनन्दी (धीमा स्वर) **मालव वीर यशोधर्मन की जय !**

[राजमाता और सम्राट् भानुगुप्त बालादित्य को छोड़ कर सब जाते हैं ।]

भानुगुप्त **माँ !**

राजमाता **बेटा !**

भानुगुप्त **मुझे लगता है, मिहिरकुल को क्षमा करके हमने अच्छा नहीं किया। भिक्षुणी की बात में मुझे सच्चाई जान पड़ती है।**

राजमाता **तब तुमने क्षमा क्यों किया ?**

भानुगुप्त **तुम्हारे लिए माँ ! तुम्हारे उस मूक वचन की रक्षा के लिए जो तुमने मिहिरकुल की पत्नी को दिया था।**

राजमाता (काँपकर) **भानु ! तुम सब कुछ जानते थे ?**

भानुगुप्त (हँसकर) **जानना पड़ता है, माँ ! तुम्हारा ही बेटा तो हूँ। माँ को भी न जानूंगा।**

राजमाता **भानु ! तुझ पर मुझे गर्व है। तेरा अकल्याण नहीं होगा।**

[बालादित्य सिर झुका लेता है। राजमाता अपना हाथ उसके सिर पर फेरती है। यहीं पर परदा गिर जाता है।]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[नगर के बाहर सार्वजनिक मार्ग का दृश्य। परदा उठने पर यशोधर्मन एक ओर से प्रवेश करता है। रूप रंग प्रायः प्रथम अंक वाला ही है, पर इस समय वह कुछ थका हुआ और चिन्तित है। वस्त्र उसके गर्द से भरे हैं। कुछ दूर चलकर वह एक टूटे पुल पर बैठ जाता है। कई क्षण मौन बैठा रहता है, फिर स्वयं बोलने लगता है।]

यशोधर्मन (स्वगत) **आनन्दी ने कितना ठीक कहा था! यह क्षमा हमें महँगी पड़ेगी। वही हुआ। क्षमा अपने आप में एक बहुत बड़ा गुण है लेकिन कुपात्र के लिए किया गया क्षमा का दान गुण नहीं रहता, अवगुण बन जाता है, जैसे सांप के मुँह में जाकर अमृत भी बिष बन जाता है। सम्राट् भानुगुप्त बालादित्य ने मिहिरकुल को क्षमा कर दिया लेकिन वह दुष्ट अपनी दुष्टता से न चूका। पंचनद प्रदेश में उसके भाई ने उसे नहीं घुसने दिया तो उसने काश्मीर के महाराज से शरण मांगी और जब वह मिल गई तो एक दिन अपने शरणदाता को गद्दी से उतार कर वह स्वयं राजा बन बैठा और···**

[सहसा नेपथ्य से नारी की चीख़ उठती है। वह किसी युवती की चीख है।]

चीख — **नहीं—नहीं—मुझे छोड़ दो! दुष्टो, मुझे छोड़ दो। ओह...कोई बचाओ! बचाओ!**

[यशोधर्मन एकदम उठ खड़ा होता है और भौंचक सा चारों ओर देखता है, पुकारता है]

यशोधर्मन — **कौन है...कौन पुकारता है? ठहरो...ठहरो...मैं आता हूँ।**

[एक युवती का भागते हुए प्रवेश। अस्तव्यस्त वेश-भूषा। चादर धरती हर घिसट रही है, जूड़े की पुष्प-माला खुलकर लटक गई है। नेत्रों में भय और क्रोध के रक्तवर्ण आँसू है। शरीर में कम्पन है। यशोधर्मन को देखकर और भी तेज़ी से पुकारती है]

युवती — **बचाओ-बचाओ, मेरी सखी को बचाओ। दुरात्मा हूण सैनिक उसे पकड़ कर ले जा रहे हैं।**

यशोधर्मन — **किधर...कहाँ...**

युवती — **उधर—वे उधर गये हैं।**

यशोधर्मन — (तलवार खींच कर) **चलो-चलो—मैं देखता हूँ।**

[दोनों तेज़ी से एक ओर जाते हैं। दो क्षण बाद दूसरी ओर से एक युवती को घसीटते हुए दो हूण सैनिक आते हैं।]

युवती — (चीखती हुई) **मुझे छोड़ दो...छोड़ दो दुष्टो.. तुम्हारा नाश होगा।**

[सहसा एक हाथ छूट जाता है। वह बिजली की भाँति तड़प कर कमरबन्द से कटार निकाल कर प्रहार करती है। हूण चीखता है]

एक हूण — ओ . ओ तेरा नाश हो, दुष्टे ! कैसी कटार मारी है ! वह तो मैं बचा गया, नहीं तो गरदन में चुभ जाती। जी में आता है कि (तलवार उठाता है) काट कर टुकड़े टुकड़े कर दूं ।

दूसरा हूण — न, न, ऐसा न करना। क्या हुआ यह कुछ गुस्से में है ! गुस्से से (हँस कर) देखो न, मुख कैसा लाल हो आया है—पलाश के पत्तों जैसा...(अट्टहास)

पहला हूण — (चिढ़ कर) आग जैसा कहो, आग जैसा···

युवती — (उसी तरह तिलमिलाती हुई) दुष्टो, अत्याचारियो, इस आग में तुम भस्म हो जाओगे। मैं कहती हूँ मुझे छोड़ दो...छोड़ दो—नहीं तो मैं तुम्हें...

पहला हूण — क्यों टर टर किये जा रही है ?

दूसरा हूण — अरे करने भी दे टर टर। सब ठीक हो जायेगी। अभी इसे कोई क्रूर नर नहीं मिला है। लेकिन हाँ, वह दूसरी कहां भाग गई...

[सहसा यशोधर्मन और पहली युवती का प्रवेश]

यशोधर्मन — सावधान हूण सैनिक ! उसे छोड़ दो ।

युवती — (आश्चर्य और भय से काँप कर) कौन। यशोधर्मन। (चीख कर) यशोधर्मन...

यशोधर्मन — (चकित स्वर) कौन...आनन्दी ! (एकदम सैनिकों पर आक्रमण करता है) ठहरो दुष्टो, लो···मैं तुम्हें अभी नष्ट करता हूँ।

हूण सैनिक — अरे पीछे हट कुत्ते !

[भयंकर युद्ध। यशोधर्मन दोनों सैनिकों के वार काटता है। युवतियां काँपती हुईं उसे देखती हैं। आनन्दी के नेत्र रह रह यशोधर्मन पर अटक जाते हैं।]

यशोधर्मन **नीच, पामर, कुत्ता कौन है, अभी पता लग जाता है। ले वार संभाल।**

हूण सैनिक (हँस कर) **लाओ, और यह संभालो।**

यशोधर्मन **संभालो तुम—अहाहा—और लो दुष्टो...**

[दोनों सैनिक चीख़ कर भागना चाहते हैं। आनन्दी सहसा आगे बढ़ती है और तलवार उठा कर एक पर वार करती है।]

आनन्दी **भाग कर कहां जायगा दुष्ट, ले।**

[चोट खाकर पहला हूण गिर पड़ता है, चीख़ता है। यशोधर्मन दूसरे पर वार करता है।]

यशोधर्मन **और तू भी मर** (चीख, यशोधर्मन हँसता है) **हा हा हा ! गये दोनों, सो गये।**

[दोनों सैनिक गिर पड़ते हैं। यशोधर्मन क्षण भर उन्हें देख़ता है, फिर आनन्दी की ओर।]

आओ देवियो ! यहां बैठें।

आनन्दी **आप ठीक समय पर आये मालव वीर।** (तीनों बैठते हैं)

यशोधर्मन **और आनन्दी तुम...तुम आज अचानक मिलीं...।**

आनन्दी **अचानक नहीं, मालव वीर। मैं आपसे मिलने ही आई थी, पर यहां से पता लगा कि आप मगध चले गये हैं।**

यशोधर्मन **जाना पड़ा देवी ! सम्राट् भानुगुप्त के देहान्त के बाद गुप्त-साम्राज्य की राज्य-लक्ष्मी सदा के लिये रूठ गई। तुम्हारी भविष्यवाणी पूरी हुई। उस दुष्ट मिहिरकुल ने चारों ओर आग लगा रखी है।**

आनन्दी — और उस आग में भारत का समस्त शौर्य और समस्त गौरव भस्म हो रहा है।

यशोधर्मन — स्वयं भारत ही भस्म हो रहा है, आनन्दी ! लेकिन सुनाओ तो तुम कहां थीं और तुम्हारे साथ यह कौन है ?

आनन्दी — यह मेरी सखी मालवी है, मालववीर ! तुम्हारे प्रदेश की एक वीरबाला। इसी के पास मैं ठहरी हूँ। मालव के परिव्राजक महाराज के एक सामन्त की कन्या है।

यशोधर्मन — कौन सामन्त ? क्या नाम है उनका ?

युवती — मैं सेनापति मारुत की कन्या मालवी हूँ, मालववीर !

यशोधर्मन — सेनापति मारुत की कन्या ! एरण के युद्ध में जो मेरे साथ लड़े थे, उन्हीं महावीर की तुम पुत्री हो, मालवी !

मालवी — हाँ देव ! उन्हीं महाभाग की मैं अभागी कन्या हूँ। परिव्राजक महाराज का विरोध करने के अपराध में हूणों ने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया।

यशोधर्मन — सूली पर चढ़ा दिया ! हूणों ने महावीर मारुत को सूली पर चढ़ा दिया ! (करुण-क्रुद्धस्वर)

मालवी — (भीगा स्वर) हाँ महाभाग...

यशोधर्मन — ओह...ओह...मित्र की याद में मेरा दिल कैसे होने लगा ! (क्षण भर मौन हो जाता है) इन अत्याचारी हूणों ने कौन-सा पाप नहीं किया ! इन राक्षसों ने किस का दिल नहीं तोड़ा ! इन लोगों ने सारे देश को तबाह कर दिया, पर देश है कि सोया पड़ा है।

आनन्दी नहीं मालववीर। देश सो नहीं रहा है। तड़फड़ा रहा है। वह उठने को आतुर है। उसे कोई उठाने वाला चाहिये, कोई मार्ग दिखाने वाला चाहिये।

यशोधर्मन जो उठाने वाले की प्रतीक्षा करता है वह मुरदा है, और मुरदों को कोई नहीं जिला सकता।

आनन्दी जिला सकता है।

यशोधर्मन कौन ?

आनन्दी मालव वीर यशोधर्मन।

मालवी हाँ मालववीर ! मालवा आज वह नहीं है जो वर्ष भर पहले था। हूणों के अत्याचार ने यहां के निवासियों को सचेत कर दिया है। धूल की तरह वे उन बर्बरों को अन्धा करने को उठ खड़े हुये हैं ?

यशोधर्मन सच !

आनन्दी घूम घूम कर यही तो देख रही हूँ आर्य ! हमारे मंत्रणागृह में सैनिकों की संख्या बढ़ती जा रही है।

यशोधर्मन जान पड़ता है आनन्दी अपने पथ पर काफ़ी आगे बढ़ गई है।

आनन्दी हूणों का नाश जिसका संकल्प हो, वह आगे नहीं तो क्या पीछे हटेगी ! सारे अन्तर्वेद में आग लगी हुई है। स्थानेश्वर, मालवा और सौराष्ट्र की प्रजा इन दुष्टों के अत्याचार से इतनी पीड़ित है कि किसी भी क्षण विद्रोह कर सकती है।

मालवी निस्संदेह मालववीर, हमें गुप्त-सम्राट् और उसके सामन्तों पर विश्वास नहीं रहा।

यशोधर्मन गुप्त-सम्राट् अब हैं कहां ? अराजकता के इस महा-समुद्र में वे न जाने कहां बह गये ! चारों तरफ़ हूण

ही हूण दिखाई देते हैं। एरण के युद्ध में जिन्हें करारी हार दी, गंगा की कछार में जिन्हें धराशायी किया, रक्त-बीज की तरह वे फिर हर कहीं से प्रकट हो रहे हैं।

आनन्दी — यह सब आर्यों की दुर्बल राजनीति का प्रमाण है।

यशोधर्मन — सच आनन्दी! जहां भी गया बराबर तुम्हारी याद मुझे आती रही। तुमने कितना ठीक कहा था!

आनन्दी — (तरल स्वर) मालववीर इस कृपा से मेरा मान बढ़ा, मुझे शक्ति मिली।

मालवी — (हँसकर) और यदि मालववीर न आ जाते तो···

आनन्दी — तो हूणों की मृत्यु और पास आती। मैं अपनी मृत्यु में जीवन से बढ़कर भयंकर हो जाती। मैं प्रेत बन कर प्रतिक्षण उनकी आत्मा भयभीत करती रहती और···

[सहसा दो व्यक्तियों का प्रवेश। एक युवक है। उसकी धोती घुटनों से नीचे आ गई है। शरीर पर चित्रित नीले रंग का महीन दुपट्टा डाले है। बाल उसके पीछे की ओर रूमाल से बंधे हैं। युवती हूण जाति की है। केसरिया साड़ी और केसरिया चोली पहने है। दोनों हँसते आते हैं। दूर से प्रणाम करते हैं।]

युवक — प्रणाम करता हूँ भद्रे! आप अभी तक यहीं हैं?

युवती — प्रणाम करती हूँ आर्ये! आप····(लाशें देखकर एकदम) ओह. यहां भी वे लोग आ पहुंचे, इस ओर तो उनका आना नहीं होता था।

आनन्दी　अब इनके लिए कोई मार्ग छिपा नहीं रहा है भारती।

यशोवर्धन　(चकित) भारती ! यह कौन है आनन्दी ?

आनन्दी　भारती हूणकन्या है, मालववीर ! हमारे कवि ने··· (आगन्तुक पास आते हैं। युवक को दिखा कर) इनसे आप परिचित नहीं हैं। ये हमारे कवि हैं वसुमित्र। इनका विचार है कि हूणों का पराभव युद्ध-क्षेत्र से अधिक संस्कृति के क्षेत्र में हो सकता है। उनके नाश से समस्या हल नहीं होगी, उनका रूपान्तर करना होगा।

मालवी　(हँसकर) अर्थात् उनकी आत्मा को अपने आर्य-विचारों से धोकर शुद्ध कर लेना होगा, और कोई इन्हें शब्दवीर ही न मान ले इसलिये इन्होंने एक हूण कन्या को शुद्ध करके अपनी पत्नी बना लिया है।

आनन्दी　और उसका नाम रखा है, भारती।

यशोधर्मन　कवि वसुमित्र का विचार बुरा नहीं है, बशर्ते कि वे शस्त्र ग्रहण की निन्दा न करते हों।

वसुमित्र　(कटार खींचकर) आज जो शस्त्र की निन्दा करता है वह कापुरुष है महानुभाव !

यशोधर्मन　और देवी भारती का क्या विचार है ?

भारती　मेरे स्वामी से मैं सहमत हूँ। रूपान्तर का मार्ग प्रशस्त करने के लिए मिहिरकुल की शक्ति का नाश आवश्यक है।

यशोधर्मन　कवि की भारती विचार और भाषा दोनों की दृष्टि से विशुद्ध भारती है।

वसुमित्र — (प्रणाम करके) महाभाग, मैं कृत्यकृत्य हुआ। देवि आनन्दी! आर्य का परिचय तो दो?

आनन्दी — ओह, कितनी अभागिन हूँ, आर्य का परिचय देना ही भूल गई।

मालवी — देवी उनसे इतनी परिचित हैं कि समझती हैं कि उन्हें हर कोई जानता है।

आनन्दी — (अनसुना करके) आप हैं मालववीर यशोधर्मन! दशपुर के विजयपति! गंगा के कछार में जिन्होंने गुप्त-सम्राट् से मिलकर मिहिरकुल को पराभूत किया था।

वसुमित्र — (चकित) मालववीर यशोधर्मन! बहुत नाम सुना था, आज दर्शन भी हुये। प्रणाम करता हूँ आर्य!

भारती — आर्य को प्रणाम करती हूँ।

यशोधर्मन — प्रणाम कवि, प्रणाम देवी! तुमसे मित्रता कर मैं धन्य हुआ। मुझे विश्वास है हमारा स्नेह निरन्तर बढ़ता रहेगा।

वसुमित्र — निस्सन्देह बढ़ता रहेगा मित्र! काल की तरह वह बढ़ता ही रहेगा।

[सहसा कोलाहल पास आता है।]

यशोधर्मन — यह क्या है! यह कैसा कोलाहल है!

आनन्दी — हूण सैनिकों ने किसी और शिकार को पकड़ा है क्या!

[सब तलवार और कटार निकाल लेतें है। यशोधर्मन देखता है]

यशोधर्मन — हूँ...संख्या कुछ अधिक है, पांच नहीं, छै सैनिक हैं और दो नागरिक हैं, उन्हें घसीटते वे ला रहे हैं।

मालवी — अरे, अरे, ये तो श्रेष्ठी हरिगुप्त और तक्षशिला से आये हुए बौद्ध स्थविर ज्ञानायन हैं।

वसुमित्र — श्रेष्ठी हरिगुप्त...अहहा... (एकदम चुप) अच्छा होगा आर्य, यदि हम उनकी रक्षा करें। उनके पास अपार सम्पदा है।

यशोधर्मन — हम करेंगे...आप सब पीछे लौटें, उधर, कवि तुम तलवार का प्रयोग उसी तरह कर लेते हो जैसे शब्दों का ?

वसुमित्र — शब्द मेरी तलवार का बल हैं क्यों कि वे शरीर में रक्त संचारित करते हैं और...

यशोधर्मन — हुआ कवि ! तुम वहाँ खड़े हो जाओ। आप से कुछ हट कर पीछे देवी आनन्दी रहेगी।

भारती — और आर्य मैं...

यशोधर्मन — तुम मेरे बाद...

भारती — आर्य मेरा अविश्वास करते हैं।

यशोधर्मन — क्षमा करें देवी ! आप सब से आगे रहें। आपके बाद रहेगी देवी आनन्दी और फिर कवि ! कवि के सामने की ओर मालवी और उनके दक्षिण भाग में मैं ठहरूंगा। सावधान, वे समीप आ पहुंचे हैं।

[कोलाहल पास आता है। वे सब यथास्थान नेपथ्य में छिप जाते हैं। तभी नगरश्रेष्ठी हरिगुप्त और बौद्ध स्थविर ज्ञानायन को बांधे हुए हूण सैनिकों का प्रवेश। एक उनमें सरदार है, शेष सैनिक।]

हूण सरदार — (अट्टहास करता है) अब बोलो हरिगुप्त ! इस जगह के बारे में तुम्हारी क्या राय है ? कौन आ सकता है यहां ?

हरिगुप्त — तुम्हारा काल।

हूण सरदार — और आप भिक्खू महाशय! आप क्या सोचते हैं?

ज्ञानायन — मैं तुम्हारे जैसे नर-पशाचों की मौत के बारे में सोचता हूँ। वह इतनी पास आ गई है फिर भी तुम उसे नहीं देख पाते।

हूण सरदार — (हँसकर) हूण लोग मौत की परवाह नहीं करते। पशुपति श्मशान के स्वामी हैं और हम पशुपति के सेवक! भिक्खू! मौत हमारी अमलदारी में रहती है।

ज्ञानायन — इसीलिये तुम्हारे पास है।

हूण सरदार — देखो भिक्खू! ज्यादा टर-टर मत करो। मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ, पर तब जब तुम मेरी दो बातें मान लोगे। शैव तो तुम बनोगे ही! पर साथ ही तुम्हें सेनापति मारुत की कन्या मालवी को मुझ से पकड़वाना होगा। सुना, उसे और उसके साथ जो गान्धार की भिक्खुनी आनन्दी ठहरी है, उसे भी।

ज्ञानायन — दुष्ट हूण! न मैं तथागत के मार्ग का परित्याग करूँगा और न मुझे किसी मालवी और आनन्दी से कोई मतलब है। जब तक मेरे सांस चलते हैं मैं हूणों के सर्वनाश की कामना करता रहूंगा।

हूण सरदार — कामना करने की तुम्हें पूरी छुट्टी है, भिक्खू! तक्षशिला को धूल में मिलते तुमने अपनी आँखों से देखा है। उसके बाद भी तुम्हें कामना में विश्वास है तो मुझे कोई इतराज़ नहीं, लेकिन सावधान! मेरी तलवार तुम पर रहम नहीं करेगी।

ज्ञानायन (कांपती आवाज़) शैतान के बच्चे ! तुझ से रहम मांगता ही कौन है ! मैं तो चाहता हूँ तू मेरा सिर काट डाल। उसे पैरों से ठुकरा, कुचल, जिससे धरती की छाती पर चोट लगे और वह काँप कर फट जाय और तुम उस में समा जाओ। तुम्हारा नाश हो जाय।

हरिगुप्त तुम्हारा नाश तुम्हारी आँखों में झाँक रहा है, हूण !

हूण सरदार तुम भी बोलते हो नगरसेठ ! तुम्हारे कितने भाई-बन्धु हूण सम्राट् के दरबार में नाक रगड़ते हैं। उनकी भार्यायें हमारे हरमों पहुँच चुका हैं। उनका पैसा हमारी सेना का सहारा है। तुम कहां से जाति के कलंक निकल पड़े !

हरिगुप्त जहां से तुम्हारी मौत निकली वहीं से राक्षस !

हूण सरदार सावधान श्रेष्ठी ! तुम्हारा काल आ पहुंचा है।

हरिगुप्त काल कहीं से नहीं आता हूण ! वह तो सदा हमारे साथ रहता है।

हूण सरदार सदा रहता है तो फिर ले उसका प्रहार होता है। (मुड़ कर) सैनिको, दोनों के टुकड़े टुकड़े कर दो। (सैनिक आगे बढ़ते हैं। उसी क्षण बिजली की तरह आगे बढ़ कर भारती एक सैनिक की छाती में कटार भोंक देती है।)

भारती सावधान !

(यह सब ऐसे होता है कि वे सब स्तम्भित-चकित रह जाते हैं। जब तक वे कुछ समझें तब तक आनन्दी विद्युत् की तरह चमक कर दूसरे सैनिक पर आक्रमण करती है। कवि बढ़ कर तीसरे सैनिक से गुथ जाते

हैं। चौथे सैनिक पर मालवी की कटार चमकती है। हूण सरदार तब तक सम्भल जाता है।)

हूण सरदार **कौन...ये कौन...सावधान सिपाहियो! सावधान!** (तलवार लेकर बढ़ता है, तभी यशोधर्मन आगे आ जाता है।)

यशोधर्मन **हूण, वहीं ठहरो। मुझसे युद्ध किये बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकते।**

हूण **दुष्ट यशोधर्मन! तो यह तेरी कारस्तानी है! राज्य में तूने विद्रोह फैलाया है!** (अट्टहास) **अच्छा मिल गया, ले संभल** (वार करता है)।

यशोधर्मन **तो हूण सरदार मुझे पहचानते हैं! आओ, तुम भी अच्छे मिले।** (वार बचा कर तलवार चलाता है। देखता है, भारती का सैनिक भाग गया है और दूसरा सैनिक कवि पर पीछे से वार करने को तैयार है। तभी भारती उस पर कटार चलाती है। लेकिन हूण सरदार कटार फेंकता है। एक चीख उठती है। यशोधर्मन मुड़ता है। भारती की छाती से रक्त का ज्वार उठता है। वह गिर पड़ती है।)

यशोधर्मन **कौन...भारती...भारती मैं आता हूँ।** (वह तेज़ी से उधर बढ़ता है, पर तभी कवि भारती के हत्यारे पर टूट पड़ता है)

भारती **नहीं...नहीं आर्य! उधर ही।**

वसुमित्र **क्या...क्या भारती...भारती...**

भारती **स्वामी...**

(कवि पागलों की तरह युद्ध करता है औ दोनों सैनिकों को मार डालता है। शेष दो सैनिक भाग

जाते है । सरदार अभी युद्ध कर रहा है । तलवारें टकराती हैं, हटती हैं, लहराती हैं और फिर बढ़ जाती हैं ।)

यशोधर्मन — **सरदार, लो तुम गये ।** (तेज़ी से कटार खींच कर बायें हाथ से फेंकता है जो गरदन में जा धँसती है । सरदार गिर पड़ता है ।)

हूण सरदार — **ओ...ओ...ओ...आर्य...** (शान्ति मृत्यु)

(यशोधर्मन शीघ्रता से हरिगुप्त और ज्ञानायन के बन्धन खोलता है । फिर भारती की ओर मुड़ता है । आनन्दी ने उसका सिर गोद में ले रखा है । एक हाथ उसका मालवी के हाथ में है, दूसरा कवि के ।)

वसुमित्र — (व्याकुल स्वर) **भारती...भारती...**

भारती — (नेत्र खोल कर क्षीण स्वर में) **स्वामी जाती हूँ, यह नहीं सोचा था...**

वसुमित्र — **भारती...भारती...**

(यशोधर्मन वसुमित्र का कन्धा थपथपाते हैं ।)

यशोधर्मन — **शान्त कवि ! मृत्यु के समय रोना पाप है ।**

आनन्दी — **मृत्यु नहीं मालववीर ! यह मृत्यु नहीं है । भारती जीवित है ।**

ज्ञानायन — (आगे बढ़ कर) **मुझे देखने दो ! मुझे देखने दो ।**

मालवी — **भन्ते ! भारती की नाड़ी जा रही है ।**

[ज्ञानायन भारती की परीक्षा करते हैं]

ज्ञानायन — **बेटी देखने दो । तुम हट जाओ, सब हट जाओ । कवि ! तुम आओ केवल तुम ! यहां हृदय पर धीरे धीरे मलो तो, ऐसे...**

[कवि हृदय को मलता है, ज्ञानायन भारती की चादर फाड़कर घाव को बांध देता है, फिर दौड़ कर पास के ताल से मिट्टी उठा लाता है। ढेर सारी गीली मिट्टी छाती से पेट तक फैला देता है। सब चित्र लिखे से देखते हैं। क्षण आते हैं, क्षण जाते हैं। भारती नेत्र खोल कर पुकारती है]

भारती स्वामी....!

वसुमित्र भारती...मेरी भारती...मेरी भारती जी उठी भन्ते!

ज्ञानायन भारती ही मर गई तो भारत कैसे जियेगा कवि? उठो, इसे अंक में लेकर उन खण्डहरों तक ले चलो।

मालवी नहीं, नहीं भन्ते ऐसे नहीं। मेरी चादर और इसकी चादर का झूला बना लो। हम सब मिल कर अपनी भारती को झुलाते ले चलेंगे।

आनन्दी मालवी की सूझ सुन्दर है, भन्ते! क्यों कवि?

वसुमित्र वह सूझ स्वीकार है।

हरिगुप्त आपत्ति न हो तो मेरी चादर भी आप ले लें।

यशोधर्मन लाओ श्रेष्ठो! आप से तो अभी बहुत कुछ लेना है।

[तीनों चादर लेकर उस पर भारती को लिटाते हैं और वसुमित्र, ज्ञानायन, हरिगुप्त तथा यशोधर्मन उसे उठा कर चलते हैं। आनन्दी व मालवी बीच में हो कर भारती को देखती हुई चलती हैं। भारती मुस्कराती है। परदा गिरने लगता है।]

ज्ञानायन यदि हम सब भारती को इसी प्रकार सम्हाले रहें, इसी प्रकार आत्मसात् कर लें तो एक बार फिर भारत-भूमि का भाग्य चमक सकता है।

आनन्दी — चमक सकता नहीं, भन्ते। वह चमकेगा, निश्चय से चमकेगा। काली रात का अन्त आ पहुँचा है। प्रभात का सन्देश लेकर उषा धीरे-धीरे आंगन में उतर रही है।

[परदा उठ कर फिर गिर जाता है और दस चरण दृढ़ता पूर्वक मंच से बाहर जाते दिखाई देते हैं]

[पूर्ण पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

[रंग मंच पर परिव्राजक महाराज की राजसभा का दृश्य। बीच में दो ऊँचे आसन है। उन पर परिव्राजक महाराज और हूण सेनापति बैठे हैं। दोनों ओर के छोटे आसनों पर मालव राज के महामन्त्री सेनापति आदि और कुछ हूण सरदार हैं। वातावरण विलासमय है। सुरा का पात्र रखा है। उसके पास एक युवती दासी फरों वाली लाल टोपी, पूरे बाँहका लम्बा लाल कंचुक पहने है। उसका घाघरा लम्बा और सफेद है, पर चूनरदार झालर का रंग हल्का नीला है। महाराजा महीन धोती और कढ़ी हुई चादर पहने हैं। वह इस समय क्रुद्ध हैं। हूण सेनापति तीव्रता से कुछ कह रहे हैं।]

हूण सेनापति — **मालवेश ! तुम्हारे राज में हूणों का जीवन निरापद नहीं है। जगह-जगह गुप्त समितियां बन गई हैं। रास्ते में, रात के समय, वन में, निर्जन में, नदीतट पर, न जाने कहां से आकर मालवा के नर-नारी हूणों पर हमले करते हैं और उन्हें मार डालते हैं। वे इस बात का प्रचार कर रहे हैं कि हूण लोग म्लेच्छ हैं, ऐसे ही म्लेछ हैं जैसे चाण्डाल ! उनके साथ मत बैठो, उनके साथ खाना-पीना मत करो।**

महाराज — **मुझे मालूम है, सेनापति ! मुझे यह भी मालूम है कि तक्षशिला और गान्धार से आकर विद्रोहियों ने**

मेरी भोली-भाली प्रजा को बहका दिया है। जैसे सारे देश में मातम छाया हुआ है। तुमने देखा, उस दिन सुवसन्तक उत्सव था, पर सारा नगर सूना पड़ा था। न वह उल्लास था, न कहीं रंगों का दर्शन। नारियों ने न सुवासित हल्की लाल साड़ियां पहनी थीं, न उनके कानों में आम्रमंजरी थी। उनके कण्ठ कुवलय की माला से ख़ाली थे।

हूण सेनापति सब कुछ देखा मालवेश। तभी तो कहता हूँ आपकी प्रजा आपकी शक्ति का लोहा नहीं मानती। बहुत सुनी थी आपके मदनोत्सव की चर्चा। पर देखता हूँ उद्यान सूने पड़े हैं, न कोई जलक्रीड़ा करता है और न कोई फूल चुनने को जाता है। मैंने एक दो बार प्रयत्न किया तो डाकुओं ने रंग में भंग कर दिया। वे नारियों को उड़ा ले गये और पुरुषों को मार डाला। यही नहीं मालवेश! ये हूण नारियों को भी उठा ले जाते हैं।

महाराज सच! उनको क्या करते हैं?

हूण सेनापति उनसे विवाह कर लेते हैं और फिर उनसे हमारे ही विरुद्ध विद्रोह फैलाने का काम लेते हैं।

महाराज विवाह करना तो अनुचित नहीं है, सेनापति। हम लोगों में परस्पर विवाह होने ही चाहिएँ। क्यों महामात्य···

महामात्य महाराज ठीक कहते हैं। ऐसा होना आर्य-संस्कृति के अनुकूल है।

हूण सेनापति लेकिन यही प्रस्ताव जब मैंने आपके सेनापति के सामने रखा तो उन्होंने इन्कार कर दिया।

महाराज — कैसा प्रस्ताव ?

हूण सेनापति — एरण के युद्ध में लड़ने वाले इनके भाई मारुत् की बेटी मालवी से मैं विवाह करना चाहता हूँ, मालवेश !

महाराज — (चकित) तुम !

हूण सेनापति — (हंस कर) हाँ मैं ! मैं उसे चाहता हूँ। वह मेरे हरम के योग्य है। आप अपने सेनापति से कहिये।

महाराज — लेकिन सेनापति···।

हूण सेनापति — मुझसे नहीं, अपने सेनापति से कहिए कि आज शाम तक वह अपनी भतीजी मालवी को मेरे पास भेज दे।

सेनापति — मालवेश ! मालवी मेरे पास नहीं है।

हूण सेनापति — तो कहां है ?

महाराज — हाँ, तो वह कहां है ?

सेनापति — मुझे कुछ नहीं मालूम, मालवेश।

हूण सेनापति — (अट्टहास) देखा मालवेश ! तुम्हारे सेनापति को यह भी पता नहीं कि उसकी भतीजी कहां है !

महाराज — यह क्या बात है, सेनापति ?

सेनापति — कह तो रहा हूँ, मालवेश ! मुझे कुछ पता नहीं।

हूण सेनापति — लेकिन मुझे पता है, मालवेश ! गान्धार की एक नीच नारी आकर इसके घर ठहरी थी। उसी के साथ मालवी गई है और अब वे कहीं आपके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं।

महाराज — क्या....क्या मालवी भी षड्यंत्र में शामिल है, सेनापति !

सेनापति — नहीं, नहीं, यह ग़लत है मालवेश, ग़लत है।

हूण सेनापति गलत नहीं। यह इतना सत्य है जितना तुम्हारा मुंह पीला पड़ जाना।

सेनापति इस बात का आपके पास क्या प्रमाण है?

हूण सेनापति प्रमाण! (अट्टहास) भारत पर शासन का दावा करने वाले हूण सेनापति मूर्ख नहीं हैं। प्रमाण यहीं सभा में उपस्थित है। (ताली बजाता है। एक हूण सरदार उठता है) इससे पूछो।

महाराज (घबराकर) कहो, क्या कहना है?

हूण सरदार महाराज! उस दिन जब मैं श्रेष्ठी हरिगुप्त और स्थविर नानायन को सूली पर चढ़ाने ले जा रहा था तो नगर के बाहर वाटिका के समीप कुछ नागरिकों ने हमला करके उन्हें छुड़ा लिया।

महाराज नागरिकों का इतना साहस!

हूण सेनापति सुने जाओ मालवेश! अपनी प्रजा की गाथा सुने जाओ। हाँ सरदार, फिर क्या हुआ!

हूण सरदार उन्होंने हमारे दो सैनिक मार डाले। मुझे घायल कर दिया। उनमें एक कवि था। उसके साथ एक हूण-कन्या थी, जिसे वे घसीट कर ले गये। उसके सरदार का नाम यशोधर्मन है....

महाराज यशोधर्मन! दशपुर का विषयपति!

हूण सेनापति हाँ मालवेश, वही। उसी के साथ है गान्धार की भिक्षुणी आनन्दी। यही मालवों के साथ ठहरी थी। (मुड़कर) क्यों सेनापति!

महाराज (क्रुद्ध) सेनापति, तुम्हारा इतना साहस! तुम इतने कृतघ्न! ठहरो। तुम्हारे साथ न्याय होगा

सैनिको ! सेनापति को बन्दी करके दो घंटे के भीतर भीतर इसका सिर यहाँ उपस्थित करो । इसके घर में आग लगा दो, सम्पत्ति लूट लो···

हूण सेनापति — और वहां जितनी नारियाँ हों, उन्हें हमारे शिविर में भेज दो । अब तो हमें यहीं बसना है । (हँसता है)

[सैनिक सेनापति को बन्दी बनाते हैं । सेनापति पहले तो घबराता है, फिर सहसा उत्तेजित होकर चिल्ला उठता है ।]

सेनापति — मालवेश ! जा रहा हूँ । पर सुन लो तुम्हारा भी अन्त आ पहुंचा है । यह ठीक है कि सारा मालवा विद्रोह की ज्वाला में भभक रहा है । यह भी ठीक है कि बर्बर हूणों के अत्याचार से त्रस्त होकर मालव-नारी ने आज शस्त्र ग्रहण किये हैं । यह भी ठीक है कि जनता को अब हूणों के चाटूकार नरेशों में विश्वास नहीं रहा है । वह जाग उठी है और वह दिन दूर नहीं है जब उसकी तलवार तेरे सिर पर होगी ।

महाराज — (क्रुद्ध) चुप हो जा नीच ! ले जाओ इस पापी को, कहीं ऐसा न हो कि मदिरा के स्थान पर हमें यहाँ रक्त बहाना पड़े ।

हूण सेनापति — शोणित और मदिरा के रंग में कोई बहुत अन्तर नहीं होता, नरेश । (अट्टहास)

सेनापति — तो आ जा, वह इच्छा भी पूर्ण कर ले ।

महामात्य — मालवेश ! नर्तकियां आने वाली हैं । रक्तपात होना...

महाराज — ठीक है । ले जाओ इसे यहां से ! जब हम आनन्द विभोर होंगे, मादकता हमारे अन्तर में जीवन उँढेल

रही होगी तब इसका सिर लाना।..........
(सैनिक सेनापति को घसीटते हुये ले जाते हैं)....
और महामात्य ! नर्तकियां अब तक क्यों नहीं आईं?
देखो तो...

महामात्य — जाता हूँ, मालवेश !

महाराज — और महामात्य । हमारे राज्य में वसन्तोत्सव न मनाया जाय यह कितने खेद की बात है ! जाओ, नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि यदि आज से ही नगर में उत्सव नहीं शुरू हो जाता तो सब को कड़ा दण्ड मिलेगा ।

हूण सेनापति — कहो सबको सूली पर चढ़ाया जायेगा ।

महामात्य — लेकिन सेनापति...

महाराज — महामात्य ! तुम जाकर वैसा ही करो, जैसा कहा है ।

महामात्य — जो आज्ञा (जाता है) ।

हूण सेनापति — अच्छा, अब बन्द करो राजनीति को । मधुबाले ! सुरापात्र भर दो...(मधुबाला सुरापात्र भर कर लाती है) पहले मालवेश को । मधुबाला उधर जाती है)

महाराज — पहले हूण सेनापति को । (मधुबाला कई बार इधर उधर जाती है)

हूण सेनापति — (अट्टहास करके) अच्छा मधुबाले ! अब जिसे तुम चाहो, उसे दो ।

(मधुबाला दो पात्र भर कर एक हूण सेनापति की ओर बढ़ा देती है दूसरा परिव्राजक महाराज की ओर । दोनों एक दूसरे को देख कर हंसते हैं, ।)

सेनापति मालवेश की मधुबाला चतुर है।

महाराज चतुरता मालवा की विशेषता है, हूण सेनापति !

हूण सेनापति (मदिरा का घूंट भर कर) बहुत ठीक।

महाराज (मदिरा पीता है) कालिदास के काव्यों की लीला-भूमि यही है हूण सेनापति !

हूण सेनापति अभी तुम्हारे ग्रन्थ पढ़ नहीं पाया।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी मालवेश की जय हो !

महाराज क्या है ! नर्तकियां अभी तक नहीं आईं ?

प्रतिहारी नहीं महाराज !

महाराज क्यों ? उन्हें क्या हुआ ! उन्होंने क्यों इन्कार किया, उनका इतना साहस !

प्रतिहारी महाराज ! उन्होंने इन्कार नहीं किया, वे तो आ रही थीं पर....

महाराज पर...पर क्या, बोलता क्यों नहीं ?

हूण सेनापति पर विद्रोहियों ने छापा मार कर उन्हें भगा दिया।

प्रतिहारी जी हाँ, अचानक राजमहल के नीचे विद्रोहियों के एक दल ने उन पर आक्रमण कर दिया और उन्हें छीन ले गये।

महाराज ओह ! ऊफ ! (तेज़ी से खड़ा होता है) कायर, नीच, तुम लोग तब क्या कर रहे थे ?

प्रतिहारी महाराज ! हमारे दल में दस सैनिक थे। छै मारे गये और शेष उनके साथ चले गये।

महाराज क्या ! क्या कहते हो ?

हूण सेनापति देखा मालवेश ! यह है तुम्हारा राज्य ! यह है

	तुम्हारी शक्ति ! मैं जानता हूँ मरने वाले सभी सिपाही हूण थे ।
	(कोई नहीं बोलता, सन्नाटा छा जाता है) बोलो—लोलते क्यों नहीं ?
प्रतिहारी	महाराज यही बात थी ।
	[दूसरे सैनिक का भागते हुए आना]
सैनिक	महाराज...महाराज !
महाराज	क्या है, तुझे क्या हुआ !
सैनिक	महाराज...(काँप कर गरदन झुका लेता है)
महाराज	(मदिरा पीकर) तुम भी बोलो ! तुम्हें कौन भगा कर ले गया ?
हूण सेनापति	जिन्न ! इसे जिन्न उड़ा कर ले गये ।
सैनिक	नहीं महाराज ! मुझे किसी ने नहीं उड़ाया । लेकिन वे लोग सेनापति को उड़ा कर ले गये ।
महाराज	(काँपता है, प्याला हाथ से छूटता है) क्या कहा !
सैनिक	सेनापति को विद्रोही उड़ा कर ले गये ।
महाराज	विद्रोही ! विद्रोही सेनापति को ले गये...विद्रोही न हुए जिन्न हो गये ! नर्तकी को ले गये, सेनापति को ले गये । धन वे छीन लेते हैं । भोजन उनसे नहीं बच पाता । (क्रोध) यह क्या बात है ! (कोई नहीं बोलता । सन्नाटा । परिव्राजक महाराज आवेश में हूण सेनापति की ओर मुड़ते हैं ।) सेनापति ! हूण लोग तो वीर होते हैं । पर वे भी क्या विद्रोहियों से मिल गये हैं ?
हूण सेनापति	(व्यंगपूर्व अट्टहास) मालव-नरेश ! होश में हो ! हूण सैनिक विद्रोहियों से मिल गये हैं मरने के

लिये। हूँ, हूँ, हूँ, यूँ क्यों नहीं कहते कि मालवे में अब परिव्राजक महाराज का राज्य नहीं है, मुट्ठी भर विद्रोहियों का राज्य है। (तेज़ होकर) एक बार मुझे जाने दो। मैं देखता हूँ तुम्हारे नगर का कौनसा साहसी आँख उठा कर देखता है। आँखें निकाल लूंगा। शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। फूंक कर रख दूंगा धरती तक को। (तलवार खींचता है) समझा क्या है! विद्रोह बातों से नहीं हथियारों से दबाये जाते हैं।

महाराज — तो आज्ञा है सेनापति। तुम्हें इस विद्रोह को दबाने की आज्ञा है।

हूण सेनापति — (अट्टहास) तब आप शान्त होकर बैठे रहिये और देखते रहिये, शाम तक कितने विद्रोहियों के सिर आपके चरणों में लोटते हैं। (रुक कर) पर...

महाराज — पर क्या सेनापति!

हूण सेनापति — मुझे रुपया चाहिये।

महाराज — जितना चाहो मिलेगा।

हूण सेनापति — अभी इसी समय।

महाराज — चलो मैं अभी कोषाध्यक्ष के पास चलता हूँ।

[दोनों तलवार खींचे जाते हैं। मधुबाला जो अब तक मँत्रमुग्धवत् खड़ी हुई थी सहसा हँस पड़ती हैं। हँसी अट्टहास में पलट जाती है। वह पात्र को तेजी से फेंक देती है। साथ ही टोपी उतारती है। जूड़े के बाल मुख पर लहरा जाते हैं और वह पहचानी जाती है। वह मालवी है। हँसते हँसते वह मस्ती से झूमती अन्दर जाती है। बोलती है]

मालवी (हँसती है) इस बूते पर राज्य करता है। कुत्ता कहीं का! तलुए चाट कर गाँव में बैठा है और अब मुंह चाटता है इम बर्बर विदेशियों का। (धीरे-धीरे क्रोध) जिस धरती की मिट्टी में पैदा हुआ, पला और बड़ा हुआ उसकी रत्ती भर लाज नहीं। उनके हाथों बिक गया है। कठपुतली की तरह नाचता है। माँ बहनों की लाज तक की आन नहीं रही। (फिर अट्टहास) पर बच्चा! अब बच कर कहाँ जाओगे! दो दिन चार दिन...(झिझकती है) लेकिन हूणों ने सचमुच आग लगा दी तो... तो क्या है, लगा दें आग। जल उठे सारा प्रदेश, भस्म हो जाय मानवसमाज, उसी भस्म में से तो विद्रोह जागेगा। चोट खाकर ही मानव-अभिमान प्रतिकार के लिये तैयार होगा। महानाश के बाद ही नव निर्माण की वेला आती है।

[बोलते बोलते तेज़ी से जाती हैं। परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

[मालवा के निर्जन वनप्रान्त में उज्जयनी और दशपुर के मार्ग पर एक टूटे मन्दिर का दृश्य। रंगमंच पर उसका केवल आगे का भाग ही दिखाई देता है। यूँ वह दूर तक फैला हुआ है। एक टूटे मार्ग से लोग आते जाते हैं। इस समय पर्दा उठने पर एक व्यक्ति टूटी हुई मुंडेर पर बैठा हुआ दिखाई देता है। वह कवि है उसके केश पीछे रुमाल से बंधे हैं। उसकी धोती जांघ तक कसी है। कमर में कटार है और रह रह कर वह उचकता और इधर उधर देखता है। फिर बैठकर गुनगुनाने लगता है]

वसुमित्र (गुनगुना कर)

हम मालव हैं, हम विद्युत की तरह प्रबल गतिमान हैं।

कर में लेकर खड्ग दुधारा,
हमने दुश्मन को ललकारा,
आज विदेशी के शासन में,
नहीं रहेगा देश हमारा,

हमें गर्व है युद्धक्षेत्र में, हम सब काल समान हैं।

[तभी किसी के आने की पदचाप उठती है। कवि चौंकता है। शीघ्रता से दीवार के पीछे हो जाता है और फिर धीरे धीरे गर्दन उठा कर देखता है फिर एकदम तन कर खड़ा हो जाता है] **कौन ?**

[एक ओर से मलवी वहाँ प्रवेश करती है। वेश बड़ा

अस्त-व्यस्त है। सिर पर टोपी, शरीर पर कंचुकी और चादर। फेंटा कसे है जिसमें कटार देखी जा सकती है। बालों की लटें मुख पर छिटक रही हैं। वह थकी हुई है पर नयनों में निराशा नहीं हैं, विश्वास की ज्योति है। आकर दीवार के पास छिप जाती है]

वसुमित्र — कौन !

मालवी — ऊंहूँ !

वसुमित्र — (दीवार पर बैठता हुआ) हमें ऊंहूँ की ही आवश्यकता थी। वह हाज़िर हो।

मालवी — (वहीं से) ऊंहूँ का नाम बताओ।

वसुमित्र — (शरारत से) नाम···नाम··· याद नहीं आता। देखो ऊंहूँ, नाम तो याद नहीं आता। हाँ काम का स्मरण है। क्या करें ! हमारे नये स्वामी सदा काम, काम, पुकारते रहते हैं। उन्हें कामरोग हो गया है। मधुबाले···अरे अरे नाम याद आ गया। (हँसता है) अब आ जाओ।

मालवी — (हँसती हुई सामने आती है) कवि काम की धुन में नाम भूल जाना शुभ लक्षण है। हमारे नये स्वामी प्रसन्न होंगे।

वसुमित्र — सो तो है। पर कहो मालवी तुम क्या कर आईं ?

मालवी — अच्छा भी और बुरा भी।

वसुमित्र — यानी—

मालवी — यानी मैं मधुबाला बनकर राजभवन में गई और वहाँ हूँणों के विरुद्ध जितना भी वातावरण बना सकती थी बनाया।

वसुमित्र — फिर !

मालवी फिर कवि, अपने चाचा को विद्रोह करते देखा।

वसुमित्र सच !

मालवी हाँ।

वसुमत्र फिर उनका क्या हुआ ?

मालवी उनका सिर काटने की आज्ञा हुई, पर ठीक समय पर हमारे दल ने उन्हें बचा लिया।

वसुमित्र समाचार शुभ हैं, हम प्रसन्न हैं।

मालवी तुम्हारी प्रसन्नता का समाचार तो अभी मैंने दिया नहीं।

वसुमित्र वह मुझे मालूम है, यही न कि भारती दशपुर में सुरक्षित है ?

मालवी (शरारत से) भारती वारती की मुझे कोई चिन्ता नहीं कवि। मैं तुम्हारे नाटक की बात कर रही हूँ।

वसुमित्र नाटक की बात ! वह जो मैं लिख रहा हूँ। ओहो ! याद आया। मैंने देवी आनन्दी से कुछ नर्तकियों का प्रबन्ध करने को कहा था।

मालवी जी हाँ ! राजभवन की नर्तकियों को हमारे दल ने उड़ा लिया है।

वसुमित्र (गद्गद्) ओ हो हो, सुन्दर ! अतिसुन्दर !! यह उन लोगों ने बहुत अच्छा किया। मालवी, उनके लिये मैंने बहुत सुन्दर नाटक लिखा है। सुनोगी ?

मालवी न, न, नाटक सुना नहीं, देखा जाता है, कवि ! और फिर मैं अभी एक महाभयानक और साथ ही अतिसुन्दर नाटक देख कर आ रही हूँ।

वसुमित्र कहाँ ?

मालवी नगर में ।

वसुमित्र — ओह ! मदनोत्सव के सम्बन्ध में किन्हीं राजभक्त कवियों ने खेला होगा।

मालवी — (कठोर) नहीं कवि ! वह हूणों ने खेला है। हूणों ने नगर में आग लगा दी है। उन्होंने चारों ओर हत्याकाण्ड मचा रखा है, उन्होंने...

वसुमित्र — (काँप कर) मालवी ! यह तुम क्या कहती हो...

मालवी — जो है, वही।

वसुमित्र — पर क्यों ! यह सब क्यों हुआ ?

मालवी — क्यों कि नगर में वसन्त के सम्बन्ध में कोई उत्सव नहीं मनाया गया। नगरवासियों ने राजाज्ञा का उल्लंघन किया। उसी का दण्ड उन्हें मिला है।

वसुमित्र — पर यह सब तो हमारे कारण हुआ था। हमने ऐसा चाहा था। तब हमारे दल ने उनकी रक्षा क्यों नहीं की ?

मालवी — रक्षा तो की, पर कुछ देर से। चाहते तो हम उस हत्याकाण्ड की सूचना नगरवासियों को पहले ही दे सकते थे। मुझे सब कुछ मालूम हो चुका था।

वसुमित्र — (चकित) मालूम हो चुका था, तो तुमने बताया क्यों नहीं ?

मालवी — क्योंकि मैं बताना नहीं चाहती थी।

वसुमित्र — पर क्यों ?

मालवी — क्योंकि मैं नगर को जलता देखना चाहती थी; क्योंकि नागरिकों को हूणों के अत्याचार के नीचे पूरी तरह पिसता देखना चाहती थी; क्यों कि मैं महानाश के प्रमाणों को अमर कर देना चाहती थी।

वसुमित्र (क्षणिक अवकाश के बाद) समझा ! मालवी, समझा ! तू हूणों के प्रति घृणा को भी अमर कर देना चाहती हो । (एकदम) लेकिन मालवी...

मालवी शान्त कवि ! तुम्हारा आशय समझती हूँ । तुम कहना चाहते हो कि हूणों को हमें आत्मसात् करना है । मैं उसका विरोध नहीं करती, पर यह तभी सम्भव होगा जब उनकी राजनैतिक मृत्यु हो चुकी होगी, उससे पूर्व नहीं ।

वसुमित्र मालवी...

मालवी और सुनो कवि ! तुम्हारी भारती पर भी हमें दृष्टि रखनी होगी । राजनीति सम्भावनाओं में विश्वास नहीं करती ।

वसुमित्र समझा मालवी ! मालव सेनापति मारुत् की कन्या कवि से अधिक राजनीति जानती है ।

मालवी यह मालवी का प्रश्न नहीं है, कवि ! हमारे दलपति की आज्ञा है ।

वसुमित्र यशोधर्मन की !

[तभी कई व्यक्तियों के आने की पदचाप, दोनों चौंकते हैं । एक सीटी की आवाज़ आती है, कवि उत्तर में एक विचित्र स्वर करता है । कुछ क्षण बाद यशोधर्मन और आनन्दी के साथ सेनापति का प्रवेश । वे सब साधारण नागरिकों के वेश में हैं ।]

वसुमित्र आइए महाभाग ! अभी आपकी ही चर्चा थी ।

यशोधर्मन तब तो मेरी आयु बढ़ने का योग है । (सब दीवार पर ही बैठ जाते हैं) कवि ! मुझे तुम से एक बहुत आवश्यक काम है ।

वसुमित्र — आज्ञा कीजिए।

यशोधर्मन — कवि को आज्ञा नहीं दी जाती, वसु! यह मैं जानता हूँ, पर अब समय आ गया है जब जनता से कुछ सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

वसुमित्र — मैंने एक सुन्दर नाटक लिखा है। आप सुनेंगे?

यशोधर्मन — सुन सकता हूँ, पर उसकी कहानी क्या है?

वसुमित्र — वही जो देवी भारती ने सुनाई थी। यूरोप को पादाक्रान्त करने वाले हूण अतीला का अन्त।

आनन्दी — ओह! उसको तुमने नाटक का विषय बनाया!

वसुमित्र — हाँ देवी! उसमें अत्याचार भी है और प्रतिशोध भी। प्रारब्ध भी है और पुरुषार्थ भी। कर्म की विभीषिका जितनी उसमें स्पष्ट हुई है उतनी और किसी कथानक में नहीं।

आनन्दी — ठीक है कवि! और उन गीतों का क्या हुआ जो तुम लिख रहे थे?

वसुमित्र — वे तो यथास्थान पहुँच भी गये। क्यों देवी मालवी!

मालवी — काकाजी इस बात की गवाही देंगे। राजभवन में उन गीतों का प्रवेश हो चुका है।

सेनापति — हाँ!

रविवर्मा — मैंने स्वयं उन गीतों को सुना है।

आनन्दी — क्या प्रतिक्रिया हुई लोगों पर?

रविवर्मा — मालव की प्रशंसा सुन कर कौन प्रसन्न नहीं होगा, देवी! हाँ, हूण सेनापति ने इस पर आक्षेप किया और मालवेश से कह कर उनका गायन रुकवा दिया।

मालवी — और रोकने का जो परिणाम होता है वह आप जानते

ही हैं। क्या राजभवन के लोग और क्या नागरिक, अब सब छिप-छिप कर उन्हें गाते हैं।

आनन्दी तब तो कार्य योजना के अनुसार हो रहा है।

यशोधर्मन और आशा बंधती है कि हम शीघ्र ही दशपुर पर अधिकार कर लेंगे।

रविवर्मा बहुत शीघ्र यशोधर्मन ! मुझे विश्वास है बहुत शीघ्र ऐसा होगा।

वसुमित्र (धीरे से) आओ देवी, जब तक ये लोग बातें करें मैं तुम्हें नाटक सुना दूं।

आनन्दी हाँ कवि ! यह ठीक है, चलो। (दोनों जाते हैं)

यशोधर्मन (रविवर्मा के कन्धे पर हाथ रख कर) आपके भरोसे सेनापति ! केवल आपके भरोसे, मैं निश्चिंत हूँ।

रविवर्मा अपने प्राणदाता के प्रति मेरा जो कर्तव्य है वह मैं जानता हूँ।

यशोधर्मन नहीं सेनापति ! प्राणदाता मत कहो, देश कहो। मालव मातृभूमि आज मरणासन्न है। वस्तुतः देश मरणासन्न है, क्योंकि वही तो भारत का नाभिस्थल है। वही चर्मवती और वेत्रवती, शिप्रा और नर्मदा का देश, वही विक्रमादित्य की क्रीड़ाभूमि, कालिदास के काव्य का प्रेरणास्थल ! उसके प्रति आपका जो कर्तव्य है उसको पूरा करने को कटिबद्ध हो जाओ।

रविवर्मा मैं कटिबद्ध हूँ विषयपति, और सदा रहूंगा।

[सहसा एक युवक का प्रवेश, सब चौंक पड़ते हैं।]

यशोधर्मन कौन !

[सब तलवारें खींच लेते है, पर युवक मुस्कराता रहता है ।]

रविवर्मा (कूद कर) **तुम कौन हो ?**

यशोधर्मन (कूद कर) **तुम यहां कैसे आये ?**

युवक **शान्त मालव वीरो, शान्त !**

[मालवी सहसा आगे बढ़ जाती है ।]

मालवी **कौन...**(ज़ोर से) **तुम...तुम कीर्तिवर्मा !**

कीर्ति **हाँ मालवी !**

[मालवी का मुख रक्ताभा से चमक उठता है, नेत्रों में प्रेम झलक पड़ता है । वह आगे बढ़ कर युवक के गले से चिपक जाना चाहती है, पर फिर सहसा ठिठक जाती है और मुड़ कर यशोधर्मन से कहती है—]

मालवी **आर्य ! ये कीर्तिवर्मा हैं, कन्नौज माण्डलिक नरेश ईश्वरवर्मा के छोटे भाई ।**

रविवर्मा **ओह ! स्व० आदित्यवर्मा के कनिष्ठ पुत्र । बहुत दिन हो गये देखे तुम्हें कीर्ति ।**

कीर्ति **हाँ आर्य ! आपसे मिलना नहीं हुआ । सेनापति मारुत् से मगध में मिलना हुआ था । वहीं मालवी को देखा था, फिर यह जब कन्नौज गई थी तब काफी परिचय हुआ ।**

यशोधर्मन **भूलता नहीं तो गंगा के कछार में भी तुम उपस्थित थे ।**

कीर्ति **वहीं तो सेनापति द्रोण के साथ आपको देखा था, और देख कर सोचा था कि भविष्य आपका है । तब से ढूँढ़ता-ढूँढ़ता अब आ पहुंचा हूँ । मगध तो समाप्त ही है ।**

यशोधर्मन — हाँ, प्रकटादित्य तो नाम-मात्र का राजा है। उससे अधिक शक्ति तो तुम्हारे भाई जीवित गुप्त को है।

कीर्ति — शक्ति इस वक्त हूणों की है, विषयपति! उन्हें जो पराजित कर सकेगा वह भारत का सम्राट् होगा। आज परम भागवत आर्य स्कन्दगुप्त की आवश्यकता है जो धरती को अपना बिछौना बना कर युद्ध की ज्वाला जला सके, जो देश को इन विदेशियों के चंगुल से मुक्त कर सके। सारे रास्ते तुम्हारा नाम सुनता आया हूँ विषयपति! मेरी सेवाएँ तुमको अर्पित हैं। युद्ध में मौखरियों का कौशल दिखाने की साध दिल में भभक रही है। क्या वह पूरी होगी?

यशोधर्मन — होगी कुमार कीर्तिवर्मा! वह बहुत शीघ्र पूरी होगी। तुम अच्छे अवसर पर आये। अब मुझे विश्वास होगया कि हूणों का काल आ पहुँचा।

[हरिगुप्त का प्रवेश।]

हरिगुप्त — और उसके साथ ही आ पहुँचा मैं।

आनन्दी — श्रेष्ठी हरिगुप्त! क्या समाचार है?

हरिगुप्त — जैसे चाहिये वैसे।

मालवी — यानी आप कहना चाहते हैं कि आपका धन लुटने से बच गया।

हरिगुप्त — लुटने से तो नहीं बचा।

मालवी — तो फिर...

हरिगुप्त — सुनो तो, मेरा धन लुटने से नहीं बचा लेकिन लुटेरे बदल गये। लूटना चाहते थे हूण पर लूट ले गये विषयपति यशोधर्मन के सैनिक...(सब हँस पड़ते

है।) आप हँसते हैं पर मैं तो लुट गया। पर अच्छा हुआ भक्त अपने को लुटवा कर ही भगवान को पाता है। महास्थविर ज्ञानायन की यही राय है।

यशोधर्मन (हँसते हैं) तो सब काम ठीक दिशा में हो रहे हैं। परिव्राजक महाराज अब आप पर प्रसन्न होंगे।

हरिगुप्त मैंने उनसे आपकी शिकायत की है। हूण सैनिक आपके सैनिकों की टोह में हैं।

यशोधर्मन बहुत सुन्दर हुआ, उन्हें आने दो। हाँ, महास्थविर कहां हैं?

हरिगुप्त वे शैव मठ के अधिपति से मिलने गये हैं।

यशोधर्मन तब आओ हम भी अपनी आगे की योजना पर विचार कर लें।

[कह कर वह दीवार के दूसरी ओर कूद जाता है। पीछे-पीछे रविवर्मा, कीर्तिवर्मा, हरिगुप्त भी जाते हैं, केवल मालवी रह जाती है। वह कई क्षण उन्हें जाते देखती है। फिर धीरे-धीरे फुसफुसाती है।]

मालवी (स्वगत) तो कीर्ति ने वचन पूरा किया। उसने किसी को पता नहीं लगने दिया कि मैंने उसे बुलाया है। ठीक ही है, देश पर जब विपत्ति के बादल घहरा उठे हों तो कोई प्रेम की चर्चा क्यों करे। और सच्चा प्रेम तो वही है जो प्रगट न हो। जो छलक उठा उसमें सार ही क्या! (विश्वास) कैसी है राजनीति! हमेशा टेढ़ा ही चलना पड़ता है, पर मनुष्य इतना गिर क्यों जाता है? हूण इतना ज़ुल्म क्यों करते हैं? परिव्राजक महाराज इतने डरपोक क्यों हैं?

विलासी क्यों हैं ? क्या विलास आदमी को कायर बना देता है ? क्या प्रेम भी विलास है ? (पीछे से वसुमित्र बोल उठता है ।)

वसुमित्र — नहीं मालवी ! प्रेम विलास नहीं है। विलास है प्रेम का अभाव !

मालवी — ओह कवि ! तुम...तुमने क्या कहा ? प्रेम विलास नहीं है !

वसुमित्र — हाँ मालवी ! जहां प्रेम है वहां विलास आ ही नहीं सकता। सूर्य के सामने कभी किसी ने अन्धकार को आते देखा है ? पर, तुम इस भावना के चक्रव्यूह में क्यों फंस रही हो ? जाओ, देवी आनन्दी तुम्हें खोजती उधर गई है।

मालवी — ओह...तो मैं जाती हूँ।

[कूद कर ग़ायब हो जाती है—कवि हँसता है।]

वसुमित्र — पगली ! प्रेम को छिपाती है। अरे भूकम्प आये और किसी को झटका न लगे ! वसन्त को क्या कोई ढूंढ़ने जाता है !...पर यह प्रेम करती किससे है ! करती होगी किसी से ! अपने को क्या ? अपना तो लाभ ही है। चलें ज़रा कुछ देर उस पेड़ पर बैठ कर कविता करें। धरती के ऊपर उठ कर कल्पना ज़रा मुक्त होकर आती है। और फिर वहां से मैं सबको देख भी सकूंगा।

[बोलता बोलता जाता है और परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

[रंगमंच पर अस्थायी रंगशाला का दृश्य। उसके दो भाग है, एक रंगभूमि है, जहां अभिनय का प्रबंध है, उसके पीछे परदा लगा है। पर्दे के पीछे नेपथ्य है। रंगभूमि के आगे दर्शकों का स्थान है, जहां भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोग अलग-अलग बैठे हैं। रंगभूमि के निर्माण में यथाशक्ति प्राचीन शैली का प्रयोग हुआ है। खम्भे सजे हुए हैं। दीवारों पर नाना प्रकार के चित्र हैं। स्थान-स्थान पर पूजा के मंगल-कलस रखे हैं। परदा उठने पर रंगभूमि खाली है। दर्शक लोग यथास्थान बैठे हैं। कुछ क्षण बाद नगाड़ा बजता हुआ आता है, उसके साथ ही एक व्यक्ति कंचुकी के मे वस्त्र पहने घोषणा करता हुआ आता है। वह आकर सिर झुका कर प्रणाम करता है, फिर घोषणा करता है।]

कंचुकी — **सज्जनो ! जैसा कि आपको सूचित किया जा चुका है, आज हम आपके सम्मुख अपना नया नाटक 'अतीला का अन्त' प्रस्तुत करने जा रहे हैं। सावधान ! नाटक आरम्भ होता है।**

[तीन बार कह कर वह फिर प्रणाम करता है और चला जाता है। उसके जाते ही नाना रूपधारी गायक और वादक बारी-बारी आते हैं और प्रणाम करके

अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते है और अपने वाद्य-यंत्रों को ठीक करते है। रह रह कर मृदंग, वेणु और वीणा आदि की स्वर-लहरी गूंज उठती है। जब ताल ठीक हो जाती है तो सभी वाद्य नर्तकों के नूपुर-झंकार के साथ बज उठते है। धीरे-धीरे तन्मय मुग्ध करने वाला संगीत उठता है। उसके समाप्त होते ही सूत्रधार प्रवेश करता है। उसके एक ओर मृंगार में जल लिए मृंगारधर है और दूसरी ओर ध्वजा लिये हुए जर्जरधर। इन दोनों के साथ सूत्रधार एक विशेष प्रकार की अभिनय-भंगी के साथ आगे बढ़ता है। फिर मृंगार से जल लेकर आचमन आदि करता है। उसके बाद ध्वजा को लेकर अभिनय करता हुआ ध्वज को उत्तोलित करता है और फिर देवताओं को प्रणाम करता है। दाहिने पैर के अभिनय से शिव को, बायें पैर के अभिनय से विष्णु को, फिर दाहिने पैर को नाभि तक उत्क्षिप्त करके वह ब्रम्हा को प्रणाम करता है। इसके पश्चात् चार प्रकार के फूल लेकर वह ध्वजा की पूजा करता है, फिर सब वाद्ययंत्रों की। यह सब कर लेने पर वह नान्दी पाठ करता है।]

सूत्रधार (नान्दी-पाठ)

हम सब की विनती सुनो ब्रह्मा विष्णु महेश,
धरा भरो धन धान्य से मिट जावें सब क्लेश।
मानव के उत्थान से हो दानव का ह्रास,
मानवता फूले फले होता रहे विकास।

[नान्दी-पाठ के अनन्तर सूत्रधार ध्वजा को जर्जरधर

को थमा देता है। फिर नेपथ्य की ओर देखकर पुकारता है—]

सूत्रधार — आर्य। इधर आओ। (नटी का प्रवेश)

नटी — आर्य ! यह आ गई।

सूत्रधार — आर्य ! वसन्त ऋतु कैसी सुहावनी है ! क्यों न कुछ गाया जाय !

नटी — हाँ आर्य ! गाने को तो मेरा भी मन करता है। कवि ने इधर एक नया गीत बनाया है।

सूत्रधार — तो सुनाओ आर्ये ! नाटक से पूर्व ही दर्शक आनन्द-रस में विभोर हो उठें, वह ऐसा गीत होना चाहिये।

नटी — सुनिये आर्य ! ऐसा ही है। (गाती है)

आया रे ऋतुराज रंगीला आया रे।
लाया रे मदभरी उमंगें लाया रे॥

× × ×

रंग विरंगे फूलों से फूला मधुवन।
कोयल सुना रही है नित नूतन गायन॥
विहगों ने भी निज कलरव लहराया रे।
आया रे ऋतुराज रंगीला आया रे॥

× × ×

पतझड़ की उन्मादी रजनी बीत गई।
कली कली पर छाई है मुस्कान नई॥
भ्रमरों के गुंजन से मन हर्षाया रे।
आया रे ऋतुराज रंगीला आया रे॥

स्वर — (नेपथ्य में) कहां है रंगीला ऋतुराज ! कहां गूंजते हैं भ्रमर ? आर्य ! कौन गाता है यह वसन्त का गीत।

सूत्रधार — अहहा ! नाटककार प्रवेश करते हैं !

नटी — आर्य ! वे कुछ क्रुद्ध हैं।

(कवि के रूप में कवि वसुमित्र का प्रवेश।)

कवि — अहो आर्य ! आज यह कैसा असमय का राग अलापा है आपने। कौन कहता है कि पतझड़ की उन्मादी रजनी बीत गई है ?

नटी — (आगे बढ़ कर) आर्य ! क्षमा करें। वसन्त ऋतु में वसन्त राग...

कवि — आर्ये ! ऋतु वसन्त होने पर भी क्या तुम नहीं जानतीं कि जनता के हृदय पर उसका तनिक भी प्रभाव नहीं है। वासन्ती उन्माद के स्थान पर शोषित का उन्माद उन्हें ग्रसता जारहा है। जीवनदायी वासन्ती वायु उन्हें छू भी नहीं गई है, उसके स्थान पर महानाश की ज्वाला में उनकी मधुर भावनाओं को झुलस दिया है।

सूत्रधार — कवि सत्य कहते हैं, है तो ऐसा ही।

नटी — पर आर्य ! यह सब क्यों है ?

कवि — क्योंकि आज हमारी मातृभूमि पर संकट है। हमारा मालव प्रदेश हूण अत्याचारियों द्वारा त्रस्त है। हमारे मार्ग निरापद नहीं हैं। हमारा जीवन-रस सूख गया है। चपटी नाक वाले उन विदेशी हूणों ने हमारी सभ्यता को चुनौती दी है।

नटी — आर्य ! आपके आज के नाटक का विषय भी तो यही है।

सूत्रधार — हाँ आर्ये ! आज के नाटक में कवि ने हूण जाति के एक पूर्वज के अत्याचारों का दिग्दर्शन कराया है।

वह एक विचित्र नाटक है। उसमें भयानक दृश्य हैं। उसमें अत्याचार और महानाश की रुद्रता का ताण्डव नृत्य है।

नटी — लेकिन आर्य, नाट्य शास्त्र के अनुसार...

कवि — अहा आर्ये! नाट्य शास्त्रों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसके इतने भेद इस बात के प्रमाण हैं कि समयानुसार उनमें परिवर्तन हो सकता है। फिर हम लौकिक रूपकों का आविष्कार सदा कर सकते हैं।

सूत्रधार — कवि स्वतंत्र है आर्ये! वह सब कुछ कर सकता है।

नटी — ठीक है आर्य! मैं नाटक का आरम्भ करती हूँ।

[सूत्रधार, नटी, जर्जरधर तथा भृंगारधर सब जाते हैं। कवि क्षण भर रुक कर दर्शकों से बातें करता है।

कवि — महानुभावो! मैंने इस नाटक में कुछ परिवर्तन किये हैं। इस कथा का सम्बन्ध इस देश से नहीं है, इसलिये इसमें आप बहुत सी वे बातें नहीं पायेंगे जो इस देश के नाटकों में होती हैं। वे हो ही नहीं सकतीं। थोड़ी देर के लिये आप रूप रंग की बात भूल कर कथा पर अपना ध्यान केन्द्रित करिये। मुझे आशा है कि अन्त में आप इसे नीरस नहीं पायेंगे। मैं आपको इस नाटक के द्वारा दूर विदेशों में ले चलता हूँ। इसकी कथा मुझे हूण नारी से मिली है। वस्तुतः इसकी आत्मा का निर्माण उसीने किया है। मैंने तो उसे शरीर मात्र, शब्द मात्र दिये हैं। मुझे आशा है कि आप इसे पसन्द करेंगे। लो, यह हूण सम्राट् अतीला इधर ही आ रहे हैं।

[कहता कहता बाहर जाता है। दूसरी ओर से हूण सम्राट् अतीला का प्रवेश। आयु लगभग ६० वर्ष, लेकिन देखने में फुर्तीला, दृढ़ और भयंकर रूप से आततायी। काली काली छोटी छोटी आँखों से रक्त टपकता हुआ, चलने पर जैसे धरती काँपती है। आवाज़ तीखी और भारी, नाक चपटी! अट्टहास करता हुआ मंच पर आता है। उसके पीछे ५-६ सरदार, उसी तरह खूंखार, गंदे और भयानक, हाथ जोड़े आते हैं।

अतीला — क्या कहा तुमने? कितने कैदी हैं इस कैम्प में?

सरदार — आलीजहाँ! यही कोई बीस हज़ार।

अतीला — बीस हज़ार! कितना वक्त लग सकता है उनका सर काटने में। (एकदम) हम समझते हैं कि बहुतों को तो ज़िन्दा गाड़ देना ठीक रहेगा।

सरदार — जहाँपनाह बजा फरमाते हैं। ऐसा ही किया जायगा और अगर आलीजहाँ पसन्द करें तो कैम्प में आग लगा दी जाय।

अतीला — (अट्टहास) तुम्हारा मतलब है सबको ज़िन्दा जला दिया जाय! हाँ हो सकता है। जहां-जहां से मैं गुज़र जाऊंगा वहां वहां घास कभी नहीं उगेगी। नहीं उगेगी। जला दो सबको, डुबो दो नदी में, लेकिन कोई निकलने न पावे। चारों ओर हमारे सैनिक घोड़ों पर सवार तैनात रहें। जो भागने की कोशिश करे उसे तलवार से काट दिया जाय।

सरदार — (झुक कर) ऐसा ही होगा जहाँपनाह!

अतीला — **और देखो, ऐसा करने से पहले सबको नंगा कर लेना।**

सरदार — **जहाँपनाह, ऐसा ही किया जायेगा।**

अतीला — **और देखो, आसपास के सारे शहरों को धूल में मिला दो। गिरजों में आग लगा दो। सब कीमती सामान लूट लो, और सब मर्दों को मार डालो। लेकिन** (वीभत्स हँसी) **औरतों को मत मारना।**

सरदार — **आलीजहाँ, उन्हें अलग रखा हैं। आपके लिये तो···**

[तभी एक युवती का चीखते हुए प्रवेश। बुरी तरह रो रही है। वस्त्र उसके फट गये हैं, पर उनके भीतर से कुन्दन सी देह चमकती है। उसके लम्बे स्वर्णीय केश बार बार मुख पर छितरा जाते है और उनके बीच से उसके नील नयन जल-प्लावित गगन में जाज्वल्यमान प्रकाश पिण्ड की तरह भासित होते है। उसका गदराया यौवन विलाप के आक्रोश से और भी रक्तिम हो आया है। वह तेज़ी से भागती हुई अतीला के चरणों पर गिर पड़ती है। सब सरदार हक्काबक्का भयातुर उसे देखते है। उनके रोकने से भी वह नहीं रुकती। अतीला उसे देख कर क्षण भर रुकता है फिर ज़ोर से ठोकर मारता है। लड़की चिल्लाती है।]

इल्डिको — **आलीजाह, जहाँपनाह, क्षमा···क्षमा कर दो। उन्हें क्षमा कर दो।**

[अतीला अब उसे देखता है, पास आता है, देखता है।]

अतीला — (भयानक, पर लोलुप स्वर) **तुम···तुम···कौन हो···कौन हो···इतनी सुन्दर···**

इल्डिको — जहाँपनाह उन्हें क्षमा कर दो—क्षमा कर दो ...

अतीला — (फुसफुसा कर) इतना रूप...हैं हैं हैं! तुम कहाँ से आई ?

सरदार — लड़की खड़ी हो जाओ ... खड़ी हो जाओ ...
[दो हूण आगे बढ़कर उसे खड़ी कर देते है, वह रोती रहती है]

अतीला — तुम्हारा क्या नाम है लड़की ?

इल्डिको — मेरा नाम इल्डिको है। मैं आप-से अपने पिता और भाई के प्राणों की भीख माँगने आई हूँ। मैं...मैं आपके चरण पकड़ती हूँ। आप उन्हें क्षमा कर दें।
[वह दौड़ कर फिर पैरों में गिरना चाहती है पर सरदार रोक लेता है।]

सरदार — अदब से खड़ा होना सीखो लड़की !

अतीला — लड़की... क्या नाम है तुम्हारा... इल्डिको... इल्डिको, सुन्दर नाम है !

इल्डिको — मैं आपसे अपने पिता और भाई के प्राणों की भीख मांगती हूँ।

अतीला — तुम्हारे पिता और भाई...कौन हैं वे...

इल्डिको — वे...वे कैम्प में कैद हैं। वे सिपाही हैं...

अतीला — (अट्टहास) सिपाही ! तुम्हारे बाप और भाई सिपाही हैं !

इल्डिको — जी...जी...

अतीला — (पूर्वत:) उन्होंने मेरे खिलाफ़ हथियार उठाये थे।

इल्डिको — जहाँपनाह ! यह उनका कसूर नहीं है, वे सिपाही हैं। सिपाही का धर्म हथियार चलाना है...

अतीला — (अट्टहास) यानी तुम कहना चाहती हो कि यह उनका कसूर नहीं, उनके हथियारों का कसूर है। लेकिन लड़की, जो मेरे खिलाफ हथियार उठाता है मैं उसका सिर काट लेता हूँ। अभी तेरे बाप और भाई का सिर भी काटा जायेगा। तू देखना, देखेगी? अभी तेरे देखते देखते बड़ी सफाई से एक ही वार में मेरे सरदार उनका सिर उड़ा देंगे। (अट्टहास) अभी उड़ा देंगे, अभी...

इल्डिको — नहीं, नहीं, जहाँपनाह! उन्हें माफ कर दो...उन्हें माफ कर दो...मुझे ही मार दो, पर उन्हें बख्श दो...मैं...मैं...आपसे भीख मांगती हूँ।

अतीला — लड़की! चुप हो जाओ! (सरदार से) इसके बाप और भाई को अभी यहाँ हाज़िर करो।

सरदार — अभी लो जहाँपनाह। (जाता है)

इल्डिको — (गिड़गिड़ाकर) जहाँपनाह, जहाँपनाह, आप मेरे पिता को क्षमा करदें। जहाँ पनाह आप मेरे बाप और भाई को माफ कर दें। जहाँपनाह दया करें... दया कर दें आलीजाह। उनकी जगह चाहे मुझे ही मारदें। पर आप उन्हें माफ कर दें। माफ कर दें। आप बादशाह हैं...आप सबसे बड़े हैं...

अतीला — जहाँपनाह तुझ पर बहुत खुश हैं, लड़की! बहुत खुश! वे तुझे, हैं हैं...हैं...वे तुझे बहुत बड़ी इज़्ज़त बख्शने वाले हैं...

(सरदार जंजीरों में जकड़े हुये दो कैदियों को लेकर आता है। एक प्रौढ़ है और दूसरा युवक। दोनों सुन्दर, स्वस्थ हैं, पर अब उनके कपड़े फटे हैं और

शरीर घायल, फिर भी वे त्रस्त नहीं हैं। वे दृढ़ता से मंच पर आते हैं। उन्हें देखते ही इल्डिको भागती है।)

इल्डिको — (चीख़) पिता...पिता...भाई...भाई

अतीला — तो ये हैं तेरे बाप और भाई—पीछे हट लड़की! (कड़क कर) पीछे हटा लो इसे...

सरदार — इधर आ लड़की! (खेंच लेता है) जहाँपनाह के सामने बाप से मोहब्बत दिखाती है!

अतीला — जहाँपनाह के सामने जो कोई किसी दूसरे से मोहब्बत दिखाता है वह उनका दुश्मन है। सरदार...

सरदार — जहाँपनाह!

अतीला — क्या देखते हो, काट डालो इनके सिर, अभी, आगे बढ़ो।

(सरदार आगे बढ़ता है। लड़की चीख़ती है। क़ैदी गरदन झुका लेते हैं। तभी लड़का आगे बढ़ता है)

लड़का — ज़ालिम हूण। याद रख तू...

अतीला — लड़के...(सरदार लात मारकर युवक को मंच से बाहर गिरा देता है और फिर तलवार उठा कर उस पर झपटता है। एक चीख उठती है। लड़की भय से आँखें बन्द कर लेती है। बाप भी काँप उठता है पर बोलता नहीं। लड़की एक बार फिर चीख़ती है)

इल्डिको — जहाँपनाह...जहाँपनाह...आप मुझ से शादी कर लें, पर पर...

अतीला — शादी के लिये तुम्हारी राय की ज़रूरत नहीं। सरदार जल्दी करो।

(सरदार तेज़ी से फिर लात मार कर इल्डिको के पिता को मंच से बाहर गिराता है, फिर तलवार खींच कर झपटता है, फिर चीख़ उठती है। लड़की फूट फूट कर रोती है। अतीला अट्टहास करता है।

अतीला — सरदार अब इस लड़की को ले जाओ। हम इससे शादी करेंगे। आज ही करेंगे। उसका इन्तज़ाम करो...

इल्डिको — (चीख़ कर) नहीं...नहीं...

सरदार — लड़की रोती क्यों है! तू भाग की सिकन्दर है। सारी दुनिया के बादशाह ने तुझे बीवी होने की इज्ज़त बख़्शी है। चल, मेरे साथ चल। जिसके बाप भाई ने जहाँपनाह के खिलाफ हथियार उठाये हों वह लड़की उनकी मलिका बने!

अतीला — हम इस लड़की पर बहुत ख़ुश हैं। बहुत ख़ुश! जाओ। जश्न मनने दो। चारों ओर ख़ुशी होने दो, ऐलान कर दो। सारे दिन जश्न होगा—नाचना, गाना, खाना, पीना और हँसना। लड़ाई बन्द रहेगी!

सरदार — (ख़ुश हो कर) ऐसा हो होगा जहाँपनाह!... आलीजाह, अभी सब इन्तज़ाम करते हैं। आओ... आओ दोस्तो...(जाने को मुड़ते हैं)

अतीला — सुनो...इल्डिको ख़ास तौर से ख़ुशकिस्मत है। वह हमारी चार-सौवीं बीवी है। इस ख़ुशी में चार सौ जानवर मार कर लाओ, चार सौ तरह के पकवान बनने दो। चार सौ दावतें, चार सौ

कैदियों के सर काटकर इस शादी का जशन मनाओ (अट्टहास)

सरदार — बिल्कुल ठीक फरमाया जहाँपनाह । बिल्कुल ऐसा ही होगा । हम चार सौ बार इस मुल्क पर चढ़ाई करेंगे । चार सौ बार इसे तबाह करेंगे ।
(जाते हैं । इल्डिको अब जैसे भय से मिट्टी बन गई है ।)

अतीला — (अट्टहास करता हुआ) चार सौ बार...हा, हा, हाँ, चार सौवीं बीवी ! इल्डिको मेरी चार सौवीं बीवी ! इसलिये ऐसा जशन मनायें..., जैसा पहले कभी नहीं मनाया था । इल्डिको मेरी चारसौवीं बीवी है ! बड़ी खुश किस्मत, ... (अट्टहास)
(कहता कहता जाता है, परदा गिरता है, दर्शकों में चेतना लौटती है । कुछ की आंखें क्रोध से लाल हैं । कुछ रो रहे हैं । वे बातें करने लगते हैं । पृष्ठभूमि में संगीत उठता रहता है)

एक दर्शक — इतने खूँख़ार, वहशी और जानवर भी दुनिया में बसते हैं !

दूसरा दर्शक — राक्षस है श्रीमान्, राक्षस ! उफ़...

तीसरा „ — 'उफ़' क्या करते हो ? आजकल जो हूण लोग हमारे देश में आग लगा रहे हैं, वैसे ही तो हैं ।

पहला दर्शक — हैं तो वैसे ही । बिल्कुल दया नहीं, करुणा और मानवता तो जैसे इन्हें छू भी नहीं गई है ।

दूसरा „ — इन्हें कोई मनुष्य कह ही कैसे सकता है !

तीसरा „ — कैसा ज़ालिम है ! बेचारी लड़की के बाप और भाई

को उसकी आँखों के आगे काट डाला और उसी से शादी कर रहा है !

चौथा दर्शक — श्रीमान्, यही बात है। ये हूण लोग यही करते हैं और यही कर रहे हैं। गान्धार, पंचनद प्रदेश, सौराष्ट्र, मालवा और स्थाणेश्वर में इन लोगों ने 'त्राहि त्राहि' मचा रखी है। पुरुषों को तलवार से काट डालते हैं और स्त्रियों को बांट लेते हैं।

पहला दर्शक — नृशंस, हत्यारे, राक्षस !

दूसरा दर्शक — हमारे राजा को क्या हो गया है ?

तीसरा दर्शक — अब राजा कहां रहे हैं ! गुप्तों का गरुड़ध्वज झुक गया है। वह अब ऊँचा नहीं उड़ेगा।

चौथा दर्शक — अब तो भाइयो ! आपको अपनी रक्षा आप करनी होगी।

[कवि का मंच पर परदे के आगे प्रवेश]

कवि — नागरिको ! आपने नाटक का एक अंक देख लिया है। दूसरा अब देखेंगे। मुझे आशा है आप उसे पसन्द करेंगे और जो त्रुटियाँ मुझसे रह गई हैं, उन्हें क्षमा करेंगे। अब दूसरा अंक देखिये।

(जाता है। घंटी बजती है परदा उठते ही अट्टहास के स्वर उठते हैं। मंच पर बहुत से सरदार बैठे हैं। वही वेषभूषा ! खानपान के दौर चल रहे हैं। माँस के लोथड़े इधर उधर बिखरे पड़े हैं। उन्हें ही उठा कर वे चबाने लगते हैं, झूमने लगते हैं। एक भयंकर शोर मचा है। इल्डिको शादी की पोशाक में अतीला के पास मूर्ति की तरह बैठी है। स्पन्दनहीन, सिसकती लाश जैसी, न मरती है, न

जीती है। बारी बारी यूरोप और एशिया के राजा-महाराजा आते हैं और भेंट रख कर लौट जाते हैं। एक ओर नृत्य हो रहा है। दूसरी ओर तरह तरह का गाना।)

अतीला (नशीला अट्टहास) जश्न मनने दो...दुनिया के बादशाह! आज जश्न मनने दो...आज तेरी चार सौवीं सालगिरह है (अट्टहास)! चार सौवीं सालगिरह!

सरदार (उसी तरह) आलीजहाँ, चारसौवीं शादी है। हुज़ूर ने अब तक चारसौ औरतों को अपनी बीवी होने की इज़्ज़त बख्शी है।

अतीला (उसी तरह) कम है सरदार! यह कम है। हम को कम से कम एक हज़ार बीवियां रखनी चाहियें। सरदार, हम तुमको अभी हुक्म देता है कि हमारे लिये छै सौ बीवियाँ हाज़िर करो।

सरदार आलीजहाँ!

अतीला और देखो वे सब इल्डिको से भी बढ़कर हों। हैं हैं हैं! सरदार, तुमको इन बातों का ध्यान रखना चाहिये। हमारे हुक्म पर अमल हो।

सरदार जहाँपनाह! अमल किया जायगा।

अतीला (अट्टहास) सरदार, हमारी बीवी कुछ खा नहीं रही। खूब खिलाओ पिलाओ उसे। यह खुशी से महरूम क्यों रहे! (एकदम रुककर) पर अभी रहने दो, अभी रहने दो, बेचारी को अपने बाप और भाई की याद आ रही होगी। क्यों सरदार! लोग माँ-बाप से मोहब्बत क्यों करते हैं।

सरदार जहाँपनाह, माँ-बाप माँ-बाप जो होते हैं। वे...

अतीला — नहीं, नहीं, यह ग़लत है। यह मोहब्बत इन्सान को कमज़ोर बनाती है। यह गुनाह है। मैं इसे बरदाश्त नहीं कर सकता। सरदार ! जहां जहां मैं जाऊं वहां वहां मोहब्बत करना जुर्म करार दिया जाय। समझे !

सरदार — समझा आलीजहाँ। आलीजहाँ, यह अंगूरी रस गॉल के मुल्क से आया है, लीजियेगा।

अतीला — बढ़िया है ! लाओ (सरदार सुराही से पात्र में डालता है। अतीला पात्र फेंक कर बोतल छीन लेता है।) ऐसे नहीं...बोतल लाओ (पीता है) ओह ज़ायकेदार है...

सरदार — और जहाँपनाह ! यह मांस प्रशिया के बावरचियों ने पकाया है।

(पूरा सिर आगे रख देता है। अतीला तेजी से उसे उठा कर खाने लगता है।]

अतीला — हूं, यह भी ज़ायकेदार है। हम खुश हुये। सबको बांट दो।

सरदार — जो हुक्म जहाँपनाह !

अतीला — और सरदार ! देखो कितनी रात गई है ?

सरदार — आलीजहाँ ! आधी रात गुज़र चुकी है।

अतीला — हम अब जायेंगे।

सरदार — जो हुक्म, आलीजहाँ !

अतीला — (लड़खड़ाता सा) हम समझते हैं आज सारा दिन खूब जश्न मना। देखो, तुमने चारसौ कैदी तो कत्ल करवा दिये थे ?

सरदार — आलीजहाँ ! शादी के ठीक बाद हुजूर मलिका के सामने उनके सिर उतारे गये थे।

अतीला	ठीक है (अट्टहास करके) हम खुश हुये। आइन्दा सात रोज़ तक हर रोज़ इतने ही सिर हमारी मलिका के कदमों में डाले जाने चाहियें। इस तरह डाले जाने चाहिये कि एक दिन मलिका खुद सिर काटने लगे (हंसता है)। अच्छा, हम जाते हैं। (मुड़कर) आओ मलिका (इल्डिको नहीं सुनती। अतीला सरदार को इशारा करता है) सरदार मलिका को बाइज़्ज़त ले चलो। (तभी दो हूण नारियाँ आगे बढ़ती हैं और इल्डिको को पकड़ कर ले चलती हैं। उनके जाते ही और लोग बेलगाम हो जाते हैं और उन्मत्त होकर सब नाचने गाने लगते हैं। शोर उठता है और पर्दा गिर जाता है। दर्शक फिर बातें शुरू कर देते हैं।)
एक दर्शक	राक्षस है, दुष्ट !
दूसरा दर्शक	देखा, कैसे खाते हैं !
तीसरा दर्शक	समझ में नहीं आता। इतने राजा और सरदार इनसे क्यों डरते थे ?
चौथा दर्शक	क्योंकि उन राजाओं और सरदारों में एकता नहीं थी। वे एक दूसरे से लड़ते थे, इसीलिये उसने उनको एक एक करके मार डाला।
पहला दर्शक	बात तो ठीक है।
दूसरा दर्शक	हूँ...हुआ तो ऐसा ही।
तीसरा दर्शक	और अब भी ऐसा ही हो रहा है।
पहला दर्शक	नहीं, नहीं, अब हम ऐसा नहीं होने देंगे।
दूसरा दर्शक	पर हम...हम कौन !
पहला दर्शक	हम प्रजा हैं। हम राजाओं को विवश करेंगे कि वे एक होकर हूणों को निकाल दें।

दूसरा दर्शक **क्या हम ऐसा कर सकते हैं ?**

तीसरा दर्शक **हम करेंगे।**

पहला दर्शक **हाँ, हम उन्हें निकाल देंगे।**

(घण्टी बजती है)

चौथा दर्शक **भाइयो। घण्टी बज रही है। तीसरा अंक शुरू होने वाला है। उसके बाद हम इस समस्या पर विचार करेंगे।**

(दर्शक सब मौन हो जाते हैं। परदा उठता है। मंच पर एक शैया है। उस पर बहुमूल्य वस्त्र बिछे हैं। प्रकाश हल्का है। चारों ओर भय का राज है। दीवारों पर बड़ी बड़ी तलवारें लटकती हैं। शेरों के सिर टंगे हैं। परदा उठने पर अतीला झूमता हुआ घूम रहा है। इल्डिको भय की प्रतिमा सी एक कोने में धँसी बैठी है।)

अतीला **इल्डिको ! देखो मैंने तुम्हारे लिये क्या क्या किया है ? तुम मेरी चारसौवीं बीवी हो। चारसौवीं ! जानती हो इसका क्या मतलब है ?** (एकदम उससे दूर हटता है, सर दबाता है) **यह सर में इतना दर्द क्यों होता है ! जैसे ज़ोर से हथौड़े चल रहे हैं। जैसे कलेजे में कोई बर्छी मार रहा है। ...उहूँ, सब ऐसे ही होता है।** (फिर इल्डिको की ओर देखता है) **इल्डिको ! इल्डिको !! पर...पर...** (चीख कर) **ओह यह क्या...यह सर दर्द ! ओह... ओह!** (एकदम चारपाई पर लेट जाता है) **ओह इतना तेज़ दर्द ! इल्डिको...इल्डिको मेरा सर दाबो...**

दाबो...इल्डिको । (इल्डिको मूर्तिवत् बैठी है गुम-सुम । न सुनती हैं, न देखती है, अतीला चीखता है) इल्डिको...इल्डिको...ओह, ओह... (जोर जोर से साँस खींचता है ।) इल्डिको, मेरा सर फटा जा-रहा है...फटा जा-रहा है...ओह, ओह! (उठ कर भागता है) यह क्या होगया... (सहसा ऊपर से अट्टहास का स्वर उठता है, वह चौंकता है) कौन...यह कौन हँसा...कौन हँसा... कोई नहीं, यहाँ कोई नहीं है । शायद मैं ही हँसा था । (जोर से हंसने की चेष्टा करता है, हंस पड़ता है पर हंसते ही चीख पड़ता है ।) ओह...ओह...यह दर्द, (इल्डिको की ओर बढ़ता है फिर ऊपर से अट्टहास उठता है, वह चौंकता है) कौन...कौन हो तुम...कहाँ छिपे हो! (चारों तरफ दौड़ता है, हँसी फिर फूटती है) अच्छा, तुम ऊपर हो! हूँ...तुम यहाँ आये कैसे... नहीं, नहीं, यहाँ कोई नहीं आ सकता । यहाँ कोई नहीं है । सब मेरा भ्रम है (सर में दर्द के कारण चीख पड़ता है) ओह, ओह, मेरा सिर...क्या मेरा सिर मेरे धड़ पर है...क्या (फिर अट्टहास) फिर कोई हँसा...कौन हँसा! ओह ये, ये, ये तो सिपाही हैं। मिश्र के सिपाही, ये...ये यहाँ कैसे आये...इनके तो सिर काटे गये थे...ये प्रशिया के नाइट हैं, ये गॉल के सरदार, ये यूनान के बादशाह...ये...ये...ये यहाँ कैसे! (एकदम काँपता हुआ पीछे हटता हटता चारपाई पर गिर पड़ता है । बुरी तरह डकारता है । धीरे-धीरे स्वर धीमा पड़ता है) ओह...ओह...

(जैसे शान्ति छाने लगती है। एक बार सचमुच वह मौन हो जाता है, फिर एकदम चीख़ कर उठता है) **कौन...कौन...तुम...तुम...तुम इल्डिको के बाप हो...तुम भाई हो...तुम** (घिग्गी बंध जाती है) **बाप...तुम भाई...तुम आँखें लाल किये मेरी ओर क्यों आ रहे हो ? तुमने तलवारें क्यों खींची हैं... तुम मुझे मारोगे...मुझे...नहीं...नहीं...नहीं ही, ही,** (फिर चीख़ कर) **हट जाओ, हट जाओ, मैं तुम सबका सिर काट लूँगा...हैं...हैं...तुम्हारे सिर नहीं हैं...सिर नहीं हैं...तुम धड़ से देखते हो, धड़ से सुनते हो** (अट्टहास करता है) **हा...हा... हा...तुम तो मरे हुए हो, तुम मुझे क्या मारोगे...** (सिर को झटका देकर) **यह तो मेरा भ्रम है... भ्रम... ओह... ओह इल्डिको, इल्डिको, उठो और...**(ऊपर से अट्टहास) **ओह... ओह, तुम फिर हँसे ! तुम...तुम इल्डिको के बाप...भाई तुम...तुम फिर आ गये...तुम मुझे इल्डिको को नहीं छूने दोगे, नहीं छूने दोगे, देखता हूँ** ।(चीख़ता है) **देखता हूँ अतीला का रास्ता किसने रोका है... हाँ, किसने रोका है** (अट्टहास बढ़ता है, वह अनेक व्यक्तियों का अट्टहास है) **नहीं...नहीं...मुझे कोई नहीं रोक सकता**—(भयभरी चीख) **नहीं रोक सकता...नहीं रोक सकता** (चीख़ बराबर तेज़ होती है और एकदम सीमा पार कर मौन हो जाती है। अतीला सहसा भयंकर वेग से गिर पड़ता है। उसके मस्तिष्क की शिरा फट जाती है। वह कई क्षण छटपटाता है और फिर मौन हो जाता है, सदा के

लिये मौन। इल्डिको धीरे-धीरे सिर उठाकर देखती हैं। रक्त देख कर उसकी चीख निकल जाती है। पर दूसरे क्षण वह शान्त होकर फुसफुसाती है।)

इल्डिको (स्वगत) **खून...नाक से खून...मुंह से खून... ओह...कोई आवाज़ नहीं...कोइ जुम्बिस नहीं... तो...तो मर गया** (भय) **मर गया...** (हर्ष से) **मर गया** (हर्ष से चिल्ला कर) **मर गया! ओह पिता... भइया...यह ज़ालिम हूण, मर गया...अतीला मर गया...वह बर्बर मर गया! यह धर्म और ईश्वर का दुश्मन मर गया! ईश्वर को सताने वाला मर गया!**

[धीरे-धीरे अट्टहास बढ़ता है और शीघ्र ही वहाँ अनेक हूण सरदार प्रवेश करते हैं। वे अतीला को मृत देख कर पीले पड़ते हैं जैसे कोई अघटित घट गया हो। मूर्तिवत् हो जाते हैं। परदा यहीं गिरता है। इसी समय बाहर की ओर से अनेक हूण सैनिक एक सेनापति के साथ आते हैं। दर्शकों में खलबली मच जाती है।]

हूण सेनापति **कहाँ हैं वे लोग जो यह नाटक खेल रहे हैं! कहाँ हैं वे लोग जो हमारे पुरखाओं का अपमान कर रहे हैं! हम अभी सबको मज़ा चखाते हैं। सैनिको! खबरदार यहाँ से कोई जाने न पावे। सबसे पहले उस** (शोर मचता है) **कवि को पकड़ लाओ।**

[तभी मंच का परदा उठता है और वहाँ कवि, सेनापति, मालवी और भारती सैनिक वेश में दिखाई देते हैं। कुछ दर्शक दौड़ कर उनकी ओर जाते हैं, कुछ

हूणों के पीछे। हूण चकित होकर देखते हैं कि अब तो वे घिर गये हैं। कवि मुस्कराता है।]

कवि आज्ञा हूण सेनापति ! हम लोग उपस्थित हैं।

हूण सेनापति सैनिको ! इनको पकड़ लो। और सिर काट डालो।

मालवी (हँसी) न, न, यह क्या, मैं तो नारी हूँ।

भारती (हँसी) और मैं भी।

हूण सेनापति तुम...तुम...

एक दर्शक (अट्टहास) क्यों डर गये ! भाइयो ! सावधान कोई हूण जाने न पाये।

दूसरा दर्शक इन अत्याचारियों को यहीं समाप्त कर दो।

तीसरा दर्शक हाँ, इनको इनके पुरखा अतीला के मार्ग पर भेज दो।

हूण सेनापति (घबरा कर) क्या···क्या···ये लोग भी···ये लोग भी····।

कवि हूण सेनापति ! मौन क्यों हो ? आगे बढ़ो····बढ़ो··· (अट्टहास), नहीं बढ़ते ! तो देखते क्या हो मालव नागरिको ! ये नहीं बढ़ते तो तुम ही आगे बढ़कर इन्हें बन्दी बना लो।

[दर्शक चारों ओर से कूद कूद कर हूणों पर झपटते हैं।]

पहला दर्शक पकड़ लो। सबको पकड़ लो।

दूसरा दर्शक शाबाश ! मालवा के शत्रुओं को बाँध लो।

तीसरा दर्शक हाँ, हाँ, शकों की भांति हूणों को भी नष्ट कर दो।

चौथा दर्शक हम हूणों का नाश कर देंगे।

पहला दर्शक हूण हमारे शत्रु हैं।

दूसरा दर्शक हूण देश के शत्रु हैं।

तीसरा दर्शक हूण मालवभूमि के शत्रु हैं।

[देखते-देखते दर्शक व कवि के साथी सब हूणों को बाँध लेते हैं। और कवि के नेतृत्व में मालवी व भारती मस्ती से गीत गातीं रंगमंच से बाहर जाती हे। वे सब लोग प्रसन्न हैं। हूणों के मुख पर भय का पीलापन छा गया है। वे गरदन झुका लेते हैं।]

गीत के स्वर

समवेत स्वर

हम मालव हैं, हम विद्युत् की तरह
प्रबल गर्जवान हैं।
कर में लेकर खड्ग दुधारा,
हमने अपने दुश्मन को ललकारा,
आज विदेशी के शासन में,
नहीं रहेगा देश हमारा।
हमें गर्व है युद्ध क्षेत्र में
हम सब कालसमान हैं।
हम मालव हैं······

[वे सब सैनिकों की भाँति संयत, पर प्रसन्न मुद्रा में बाहर जाते हैं। उनका स्वर गूंजता है। वह आशा और विश्वास, उत्साह और उमंग का स्वर है।]

(परदा गिरता है)

मिहिरकुल ढोंगी कहीं के ! आस्तीन के सांप ! आर्यों की होड करते हैं ! तुम जैसों की वजह से ही मुझे बार बार आगे बढ़ कर पीछे हटना पड़ा है ।

[वे लोग जाते हैं और दो क्षण बाद एक हूण सैनिक शैव गुरु के साथ वहाँ प्रवेश करता है। मिहिरकुल सहसा उन्हे देख कर आगे बढता है और नमस्कार करके आसन पर बैठाता है।]

सैनिक आलीजहाँ ! शैव गुरु हाज़िर हैं ।

मिहिरकुल आइये . आइये गुरु साहब, इधर तशरीफ रखिये । हं...हं ...हं ..इधर ! कहिये आपका काम ठीक चलता है ? पूजा-पाठ हमेशा की तरह होता है ? आपको कोई कष्ट तो नहीं है ?

शैवगुरु कष्ट तो मानने से होता है हूण सम्राट् ! पशुपति कष्टों को दूर करने वाले हैं । हलाहल को कण्ठ में धारण कर ही वे विश्व का कल्याण करते हैं । श्मशान उनका निवासस्थान है ।

मिहिरकुल इसीलिये तो मैं इस देश को श्मशान बनाता जा रहा हूँ ।

शैवगुरु हूण सम्राट् ! महादेव श्मशान में इसीलिये रहते हैं कि शेष संसार नगरों में निवास करे । परन्तु आप तो अपने सुख के लिये बसों हुओं को उजाड़ते हैं ।

मिहिरकुल (हँसाता है) हं, हं, हं, गुरुदेव । महादेव देवाधिदेव हैं । वे सब कुछ कर सकते हैं । उन्हीं की कृपा से मैं आज सम्राट् हूँ । आप उनके उपासक हैं और मैं भी आपकी सहायता की आशा करता हूँ शैवगुरु ।

अपना नारा देश हमारा,
हम सब इसके प्राण हैं। हम मानव हैं...

शिप्रा चम्बल कर भैरव रव,
माँग रही हैं दुश्मन के शव,
दूर सिन्धु में ले जायेंगी,
धरती पर न जले ये दानव।

इन्हें जलाना धरती पर, यह धरती का
अपमान है। हम मालव हैं...

परशुराम की वीरभूमि पर,
हूणों का हुँकार भरा स्वर,
सुन कर भी क्या मौन रहेंगे,
हम महान मालव प्रलयंकर !

ले कुठार अब हमें मिटाना
दुश्मन का अभिमान है।
हम मालव हैं, हम विद्युत् की तरह
प्रबल गतिवान हैं ॥

[जनता साथ साथ गीत को गाती है। भीड़ बराबर बढ़ती जाती है। उसमें नाना रूप, रंग, वय और वेशधारी व्यक्ति हैं ! पर सब में एक समानता है अर्थात् उनके मुखों पर एक जैसा उत्साह, उनकी आँखों में एक जैसी आशा की उमंग, उनके शरीरों में एक जैसी स्फूर्ति है। गीत रुकते ही वे गगन-भेदी स्वर में पुकारते हैं। पहले मालवी पुकारती है फिर जनता।]

मालवी **जय, मालव भूमि की जय !**

जनता (समवेत स्वर) जय, मालव भूमि की जय !

मालवी जय, मालव जनता की जय !

जनता जय, मालव जनता की जय !

मालवी हम हूणों को मालवा से निकाल कर रहेंगे ।

जनता हम हूणों को मालवा से निकाल कर रहेंगे ।

मालवी हम हूणों का नाश कर देंगे ।

जनता हम हूणों का नाश कर देंगे ।

मालवी हूण बर्बर हैं।

जनता हूण बर्बर हैं ।

मालवी हूण विदेशी हैं ।

जनता हूण विदेशी हैं ।

मालवी हूण हमारी माँ बहनों के शत्रु हैं ।

जनता हूण हमारी माँ बहनों के शत्रु हैं ।

मालवी हूण हमारे देश के शत्रु हैं ।

जनता हूण हमारे देश के शत्रु हैं ।

मालवी अपना नारा !

जनता देश हमारा ।

मालवी हम सब—

जनता इसके प्राण हैं ।

[कई क्षण नारे गूंजते रहते है, फिर शान्त होते हैं तो आनन्दी आगे बढ़ कर एक ऊँचे से स्थान पर खड़ी हो जाती है । उसके मुख पर प्रकाश उभरता है । नयन चमकते है । वह वीरांगना की भाँति उत्तेजित स्वर में बोलती है ।]

आनन्दी मालवी वीरो ! हमें बहुत प्रसन्नता है इस बात की कि आप लोग अपने देश को इतना प्यार करते हैं ।

आपका देश समृद्धि और सम्पन्नता का प्रदेश, सभ्यता और संस्कृति का प्रदेश, महावीरों और राजनेताओं का प्रदेश ! आपका प्रदेश समूचे देश का नाभिस्थल है, उत्तर और दक्षिण का सन्धिस्थल । सच पूछिये तो यह देश का मर्मस्थल है । वह यमुना, रेवा, वेत्रवती, चर्मवती, नर्मदा, पार्वती और शिप्रा से सिंचित है । यह वह उर्वर स्थल है जो अन्नपूर्णा के विरद से सुशोभित है । यह वह स्थल है जिसे प्रलय भी नहीं छू सकी थी । यही सहस्त्रार्जुन और परशुराम की क्रीड़ाभूमि है । यहीं कृष्ण-बलराम ने शिक्षा पाई थी । यहीं पर यादव गण ने राज्य किया । यहीं प्रतापी चण्डप्रद्योत का प्रताप प्रखर हुआ । यहीं उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कथा पनपी और यहीं पर उत्पन्न हुआ वह वीर जिसने शकों का नाश करके शकारि की उपाधि पाई । शक, जिन्होंने विदेशों से आकर आर्य भूमि को अपवित्र किया था । शक, जिन्होंने अपने बर्बर अत्याचारों से शान्त मालव वीरों के क्रोध को भड़का दिया था । वे भूल गये थे कि मालव वीर सिकन्दर जैसे विश्वविजयी के दांत खट्टे कर चुके हैं । वे माँ की रक्षा करना जानते हैं ।

[यहीं पर मालवी चिल्लाती है ।]

मालवी — हम माँ की रक्षा करेंगे ।

जनता — हाँ, हम माँ की रक्षा करेंगे ।

मालवी — मालव जाति अजेय है ।

जनता — मालव जाति अजेय है ।

आनन्दी आपका उत्साह आनन्दवर्द्धक है मालव नागरिको ! आप अपने पूर्वजों के अनुरूप वीर और मेधावी हैं। आपके सामने आज वही दृश्य, वही अवस्था है जो छै सौ वर्षों पहले एक और मालव वीर के सामने थी। उसके देश को शकों ने पादाक्रान्त कर रखा था, पर वह वीर हतोत्साहित नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ ! इसका कारण यह था कि सारी मालव जाति उनके साथ थी, जैसे आज है।

मालवी हम अपने स्वामी के साथ हैं।

जनता हाँ, हम अपने स्वामी के साथ हैं।

[फुसफुसाहट शुरू होती है।]

जनता १ हमारा स्वामी कौन है ?

जनता २ हाँ, स्वामी कौन है ?

आनन्दी मालववीरो ! मालव जाति अपने स्वामी के साथ थी। आज हमारे स्वामी देखने में तो परिव्राजिक महाराज हैं, परन्तु वह कायर हैं, कुलकलंक है। वह हूणों का दास है। हूण हम लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं, उन्होंने हरे-भरे प्रदेश को राख बना दिया। उन्होंने नगरों को श्मशान बना डाला। उन्होंने हमारी माँ बहनों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये। अनेकों नारियों ने अपने प्राणों तक का बलिदान कर डाला। वे उन राक्षसों की क्रोधाग्नि में जल मरीं। मैंने यह सब कुछ इन्हीं आँखों से देखा पर (गहरी साँस लेती है)...पर मैं जीती रही और इसलिये जीती रही

कि अपने पर अत्याचार करने वालों से प्रतिशोध ले सकूं। मैं उन्हें बता सकूं कि आर्य ललना की क्रोधाग्नि जब भभकती है तो बड़े-बड़े साम्राज्य उसमें भस्म हो जाते हैं। मैंने गान्धार को अग्नि की लपटों में भस्म होते देखा है। मैंने तक्षशिला को खण्ड खण्ड होकर धूल में मिलते देखा है। मैंने आर्य नारियों को पाँवों के नीचे कुचली जाती देखा है। मैं अब हूणों को सिसक-सिसक कर मरते देखना चाहती हूँ। मैं उन्हें मिटते देखना चाहती हूँ। इसलिये मैं गुप्त-सम्राट् के पास गई। पर हूणों की रीढ़ तोड़ कर भी वह वीर अपने हृदय से पराजित होगया। और अब वीरवर भानुगुप्त के अस्त होते ही गरुड़-ध्वज को गृह युद्ध की ज्वाला ने झुलस दिया है। गुप्तों की राजलक्ष्मी सो गई है। इधर मालव नरेश विदेशियों का क्रीत दास है। तब आज हम सबकी दृष्टि एक ही वीर पर है और वह वीर है दशपुर का विषयपति वीरश्रेष्ठ यशोधर्मन।

मालवी — मालव वीर यशोधर्मन की जय।

जनता — मालव वीर यशोधर्मन की जय।

आनन्दी — (गम्भीर धीमा स्वर) मालववीर यशोधर्मन की जय। मालव वीरो! सचमुच वह महावीर जय के योग्य है। वह सचमुच मालव भूमि का उद्धार कर सकता है। उस मालव भूमि का जिसके बारे में कवि ने गाया है।

परशुराम की वीर भूमि पर
हूणों का हुँकार भरा स्वर

सुनकर भी क्या मौन रहेंगे
हम महान मालव प्रलयंकर !

[गीत की अन्तिम पंक्ति आनन्दी निरन्तर बढ़ते उत्साह से तीन बार पढ़ती है। जनता उसे दुहराती हैं, उसकी वाणी में और भी अधिक तेज और ओज है। सहसा सामने से एक हूण दल आजाता है। वह कुछ कर सके कि इससे पहले ही तलवार खींच कर मालव नागरिक उन्हें घेर लेते है और शस्त्र रखवा लेते है। गीत एक क्षण को बन्द नहीं होता।]

गीत

बर्बर हूणों की बस्ती पर,
इनकी मदिरामय मस्ती पर,
वज्र गिराने आये हैं हम,
इनकी जहरीली हस्ती पर।

(हूण भय से काँप उठन हैं। तभी मालवी बीच में पुकार उठती है।)

मालवी **मालववीर यशोधर्मन की जय !**

जनता **मालववीर यशोधर्मन की जय !**

(जनता बार बार जय जयकार करती है और हूण केवल तिलमिलाते है और परदा गिरता है)

छटा दृश्य

(परिव्राजक महाराज की राजसभा । दूसरे दृश्य वाली अवस्था । परदा उठने पर सामने केवल महाराज, हूण सेनापति, महामात्य तथा नये सेनापति बैठे हैं । सुरापात्र लिये मधुबालाएं कुछ दूर पर हैं । प्रतिहारी और कचुंकी तथा सैनिक लोग भी कुछ दूर पर शान्त गम्भीर भाव से खड़े हैं । वे चारों अत्यन्त गम्भीर भाव से मंत्रणा कर रहे हैं ।)

हूण सेनापति — महाराज । यह अवस्था अब और अधिक देर तक नहीं चल सकती । आप यदि इतने भीरु हैं तो शासन की बागडोर मेरे हवाले कीजिये ।

महाराज — सेनापति, शासक तो आप ही हैं । मैं तो आपका सेवक हूं । क्या कभी मैंने आपके किसी आदेश को टाला है ? क्या कभी आपका कोई काम रुका है ?

हूण सेनापति — लेकिन...लेकिन आपकी प्रजा हमारा विरोध करती है । वह अब हथियार उठाती है । औरतें तक हथियार उठाती हैं ।

महाराज — तो उड़ा दो ऐसी प्रजा को, आग लगा दो, हो जाने दो श्मशान । मैं श्मशान पर ही राज्य करूँगा ।

महामात्य — परिव्राजक महाराज क्षमा करें । प्रजा का इसमें कोई अपराध नहीं ।

हूण सेनापति — तो किसका अपराध है ?

महामात्य — वह अपराध है दशपुर के पुराने विषयपति यशोधर्मन का। उसके साथ गान्धार की वह चरित्रहीन भिक्षुणी आनन्दी है और हैं सेनापति मारुत की कन्या मालवी और मौखरियों के राजकुमार कीर्तिवर्मा, वैसों का सरदार नरवर्धन, हूण कन्या भारती और उसका पति कवि वसुमित्र।

हूण सेनापति — भारती...भारती का पति...क्या बकते हो महामात्य ?

महामात्य — जो बात है वही कह रहा हूँ, हूण सेनापति। यह समय क्रोध का नहीं है। मैं अब भी कहता हूँ कि यदि हम यशोधर्मन को पकड़ सके तो...

महाराज — (क्रुद्ध) ठीक कहते हो, उसे पकड़ सकें तो...उस दुष्ट ने सीधी-सादी जनता को तिरछी राह दिखाई है। उसने लोगों को पागल कर दिया है। पर हाँ, वह अब तक पकड़ा क्यों नहीं गया ?...सेनापति !

सेनापति — आज्ञा महाराज !

महाराज — यशोधर्मन अब तक पकड़ा क्यों नहीं गया ?

सेनापति — जी...जी...इसका उत्तर तो...

महाराज — जवाब क्यों नहीं देते ? हिचकते क्यों हो ?

सेनापति — (हूण सेनापति की ओर देखकर) महाराज जवाब दे तो रहा हूँ। इस बात का उत्तर तो हूण सेनापति से पूछिये। वे ही सेना का संचालन करते हैं।

हूण सेनापति — पर मालव नरेश की सेना के सेनापति तो तुम हो। तुम अपने प्रदेश को जानते हो, तुम अपने आदमियों को जानते हो।

सेनापति जानता हूँ। तभी तो कहता हूँ कि धूल पर भी लाठी से प्रहार किया जाये तो वह भी आँखों पर आक्रमण करती है। फिर मालवा में तो मनुष्य रहते हैं। आपके सैनिकों ने उन पर इतने अत्याचार किये हैं...

महाराज क्या बकते हो, सेनापति! हूण सेना मालवे में इस लिये है कि पड़ोसियों से उसकी रक्षा करे।

हूण सेनापति अगर हम यहां न होते तो धूल के कण की तरह तुम लोगों का पता भी न लगता।

सेनापति तब देखा जाता। आज तो आंधी तूफान में उड़ने वाले पत्ते की तरह हमारा कहीं पता नहीं है।

हूण सेनापति मालूम होता है तुम भी विद्रोही हो।

सेनापति हूण सेनापति! काश कि मैं विद्रोही हो सकता परन्तु अब भी कुछ नहीं बिगड़ा...

महाराज सेनापति...सेनापति!

महामात्य मैं दोनों सेनापतियों से प्रार्थना करता हूँ कि इस समय परिस्थिति गम्भीर है।

हूण सेनापति महामात्य! वह सेनापति नहीं है। सेनापति केवल मैं हूँ।

सेनापति वही, वही तो मैं कह रहा हूँ। यशोधर्मन के विद्रोह का उत्तरदायित्व तुम पर है। तुम ज़िम्मेदार हो इस अराजकता के। तुम्हारे कारण मालवा पर विपत्ति के बादल घहरा रहे हैं।

हूण सेनापति (उठकर तलवार खींचता है) ठहर गुस्ताख! तेरी इतनी हिम्मत!

[सहसा एकदम चारों ओर से मालव सैनिकों और उनके साथ यशोधर्मन कीर्तिवर्मा, रविवर्मा आदि का प्रवेश ।)

यशोधर्मन उस बेचारे की हिम्मत क्या देख रहे हो ? इधर देखो, हिम्मत स्वयं चल कर तुम्हारे पास आ गई है ।

[सब चौंक कर खड़े हो जाते हैं ।)

हूण सेनापति (काँप कर) कौन...!

महाराज (भयातुर) कौन यशोधर्मन तु...उ उ म...

महामात्य (भयातुर) तु ..उ...उ म अ अ अ ..भी ईई...रवि ई व र मा...

सेनापति (चकित पर संभल कर) महावीर यशोधर्मन आप !

यशोधर्मन हाँ मैं ! क्यों आप लोगों को अचरज होता है ! मैं यहाँ कैसे आ गया ! नगर में और राजभवन के द्वार पर तुम्हारे सैनिकों ने मुझे रोका था । उन्हें जवाब देने के लिये मैं अपने सैनिक छोड़ आया हूँ ।

हूण सेनापति (कड़क कर) सावधान यशोधर्मन ! तूने सांप के मुंह में उँगली दी है ।

यशोधर्मन लेकिन वह उँगली सांप के दांत तोड़ने की शक्ति रखती है ।

हूण सेनापति याद रख यह शेर की मांद है ।

यशोधर्मन शेर को उसकी मांद में पछाड़ने वाले ही वीर होते हैं सेनापति । पिंजरे के शेर पर हथियार चलाना हूणों का काम हैं ।

(हूण सेनापति सीटी बजाता है ।)

हूण सेनापति तो ठहर दुष्ट ! मैं तुझे अभी मज़ा चखाता हूँ ।

(देखते देखते नंगी तलवारें खींचे हूण सैनिकों का चारों ओर से प्रवेश। उनके अन्दर आते ही चारों ओर फैले प्रतिहारी, कंचुकी सब तलवार खींच लेते है, यहाँ तक कि मधुबालायें भी सुरापात्र फेंक कर तलवार और कटारें सूत लेती है। यशोधर्मन अट्टहास करता है।]

महाराज — **हैं...हैं...हैं यह क्या! षड्यंत्र...षड्यंत्र...षड्यंत्र राजभवन में भी षड्यंत्र।**

हूण सेनापति — **धोखा, यहाँ भी धोखा, पर ले सम्भल।**

[युद्ध आरम्भ हो जाता है। तलवारें झंकार उठती है। जैसे ही हूण सैनिक आते हैं मालव सैनिक उनके पीछे इधर से उधर से, कूद पड़ते है। रविवर्मा आगे बढ़कर हूण सेनापति को ललकारता है।)

रविवर्मा — **आ तुझसे मैं ही निबट लेता हूँ।**

हूण सेनापति — **आ जा दोज़ख के कुत्ते।** (युद्ध करते एक ओर जाते हैं)

यशोधर्मन — **आओ परिव्राजक महाराज! हम तुम भी एक दूसरे को परख लें।**

महाराज — **आ जाओ।**

[इतने में महामात्य कीर्तिवर्मा पर आक्रमण कर बैठते है और मधुबाला रूपी मालवी महाराज पर तलवार चला देती है, लेकिन वह संभल कर वार रोकता है।]

मालवी — **उधर जाने से पूर्व महाराज! मुझसे भी दो हाथ करलें।**

महाराज — **तुम...तुम मालवी। तुम भी लड़ती हो** (हँसता है)

जाओ तुम रनवास में बैठो । मैं यशोधर्मन से निबटे लेता हूँ ।

यशोधर्मन — आओ महाराज । मैं तो आपकी राह देख रहा हूँ । मालवी तुम कीर्तिवर्मा की मदद करो ।

[भयंकर युद्ध]

महाराज — ले देख...संभल यशोधर्मन ।

यशोधर्मन — मैं क्या संभलूंगा महाराज ! संभलना तुम्हें है । देशद्रोही गद्दार, ले तू गया...

[महाराज की चीख़ और पतन । साथ ही हूणों की सेना का आना । कीर्तिवर्मा, रविवर्मा यशोधर्मन मालवी सब जी तोड़ कर युद्ध करते हैं । वे घिर गये हैं, पर तभी पीछे से आनन्दी और वसुमित्र के साथ मालव नागरिकों का दल शस्त्र लिये वहाँ प्रवेश करता है और देखते देखते राजसभा लाशों से पट जाती है । हूण भाग जाते हैं । नागरिक और सैनिक हर्षातिरेक से जय जयकार करते हैं ।]

सै० और नाग० — मालववीर यशोधर्मन की जय ! मालव प्रदेश की जय !

यशोधर्मन — नागरिको, सैनिको और साथियो ! यह जय जयकार मनाने का अवसर नहीं है। यह तो अभी आरम्भ है ।

आनन्दी — लेकिन अन्त का आरम्भ ।

यशोधर्मन — ठीक है देवी आनन्दी ! फिर भी आरम्भ आरम्भ है । तनिक सी चूक महान विजय को महान पराजय में पलट सकती है । हमें यह नहीं भूलना है कि हम चारों ओर से हूणों से घिरे हैं ।

वसुमित्र — भूलने की बात आपको सूझी कैसे, मित्र ! क्या हमसे कोई प्रमाद हुआ है ?

यशोधर्मन — प्रमाद नहीं कवि, पर तुम जानते हो कि 'जय जयकार' बहुधा अभिमान पैदा कर देता है, और अभिमान...

कीर्तिवर्मा — और अभिमान मनुष्य को कायर बनाता है। ठीक है मालवेन्द्र ! आपकी चेतावनी ठीक है परन्तु प्रत्येक विजय हमारे बढ़ते हुये कदम की साक्षी है। उससे हर्ष होना स्वाभाविक है और जो स्वाभाविक है उसे रोकना....

मालवी — उसे रोकना प्रकृति के विरुद्ध जाना है।

वसुमित्र — ठीक कहा मालवी ! कीर्तिवर्मा तुमने भी ठीक कहा।

यशोधर्मन — मैं रोकता कहां हूँ। मैं तो याद दिलाता हूँ लेकिन.... अरे भारती कहां है ?

वसुमित्र — भारती प्रत्येक भारतवासी की जिह्वा पर है। (तभी दूर जय जयकार के शब्द उठते हैं—साथ ही गीत की ध्वनि गूंजती है।)

गीत — जय मालव जनता की जय हो,
अत्याचारी तेरा क्षय हो,
बांध कफन लड़ने निकले जब
हमें मृत्यु का क्यों कर भय हो !
हम आंधी है, साथ हमारे जनता के तूफान हैं।
हम मालव है, हम विद्युत् की तरह प्रबल गतिवान हैं।

वसुमित्र — सुना भारती का स्वर मित्र !

यशोधर्मन — सुना कवि....कवि की भारती को सुना।

(देखते देखते असंख्य नागरिकों के साथ भारती का गाते हुये प्रवेश। सब लोग साथ उसी गीत को गा उठते हैं। रुकते हैं तो जय जयकार गूंजता है।)

जनता — मालवेन्द्र की जय महावीर मालवेन्द्र की जय !

यशोधर्मन — मेरे मित्रो, नागरिको ! मैं मालवेन्द्र नहीं हूँ। मैं तो आपका सेवक हूँ। एक छोटा सा सेवक ! मुझे मालवेन्द्र न कहो।

कीर्तिवर्मा — तो क्या कहें ?

रविवर्मा — कुछ तो कहना ही होगा। मालवा अब आपका है।

यशोधर्मन — नहीं, वह मालवे की प्रजा का है।

आनन्दी — और आप मालवे की प्रजा के सरताज हैं।

मालवी — तब आपको मालवेन्द्र कहना अनुचित नहीं है। फिर भी हमारे कवि कुछ नाम सुझा सकें तो···

आनन्दी — नाम ढूंढ़ने दूर नहीं जाना होगा, मालवी। मालवेन्द्र न सही उन्हें जनेन्द्र कहा जा सकता है।

मालवी — जनेन्द्र !

कीर्तिवर्मा — अर्थात् जनता के स्वामी।

वसुमित्र — जी हाँ, जनता के नेता। नाम सुन्दर है। देवी आनन्दी की जय हुई। हमारे मित्र आज से जनेन्द्र के विरुद से पुकारे जायेंगे। बोलो जनेन्द्र यशोधर्मन की जय !

समवेत स्वर — जनेन्द्र यशोधर्मन की जय !

(यशोधर्मन मस्तक झुका लेता है और क्षण भर बाद तलवार खींच कर आगे बढ़ जाता है। सब लोग पीछे पीछे जाते हैं। कई क्षण जय जयकार गूंजती रहती है फिर परदा गिर जाता है)

●

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(मिहिरकुल की छावनी, प्रथम अंक के तीसरे दृश्य से मिलती जुलती अवस्था है। रूप रंग भी प्रायः वैसा ही है। परदा उठने पर मंच पर मिहिरकुल सैनिक वेश में व्यग्रता से इधर उधर घूमता दिखाई देता है। उसके सामने कई हूण अधिकारी आँखें नीची किये खड़े हैं। उनके चेहरों पर भय अंकित है। वे व्याकुल भाव से कभी कभी सम्राट की ओर देख लेते हैं और फिर दृष्टि घुमा लेते हैं। मिहिरकुल बार बार गरदन उठा कर उनकी ओर देखता है और बोलता है।)

मिहिरकुल — **यानी तुम कहना चाहते हो कि सौराष्ट्र भी घिर गया है। वलभी में द्रोणसिंह ने हूणों की शक्ति तोड़ दी, यानी उसने तुम्हें निकाल बाहर किया, यानी उसने मेरे मुँह पर तमाचा मारा। मैं पूछता हूँ तुम वहां किस लिये थे? सौराष्ट्र को हूण साम्राज्य का अंग बनाने के लिये या मेरे पास यह कहने को दौड़ आने के लिये कि वलभी का पतन हो गया! और...और मालवा से यशोधर्मन ने हूणों को निकाल दिया और स्थाणेश्वर में भी गोलमाल है!**

पहला सरदार आलीजहाँ, समाचार ऐसे ही हैं। हमें और जगहों का तो इतना डर नहीं है लेकिन मालव में दशपुर के राजा ने सचमुच हमारी शक्ति तोड़ दी।

मिहिरकुल (पैर पटक कर) तुम्हें यह सब कहते शर्म नहीं आती!

वही सरदार शर्म तो आती है जहाँपनाह। जी में आता है अपनी ही कटार अपने सीने में भौंक लूं। पर...पर जहाँपनाह! उस यशोधर्मन से एक बार दो दो हाथ करने की साध है।

मिहिरकुल तुम्हारी साध पूरी होगी। हम सबसे पहले इसी-लिये मालवे आये हैं। दशपुर को समाप्त करके हम यशोधर्मन की रीढ़ तोड़ देना चाहते हैं।

दूसरा सरदार जहाँपनाह ने वैसे तो बिल्कुल मेरे मन की बात कही है, पर मेरी एक अर्ज़ है।

मिहिरकुल सुनेंगे।

दूसरा सरदार जहाँपनाह! मालवे में राजा नहीं प्रजा से युद्ध करना होगा। वहां धरती का एक एक बच्चा सिपाही बन गया है। औरतें तलवार चलाती हैं। कुछ पता नहीं मंत्र पढ़ने वाला पण्डित किस वक्त शास्तर छोड़ कर शश्तर ले ले।

मिहिरकुल सुन चुका हूँ। सब कुछ सुन चुका हूँ। क्यों बारबार मेरे कानों में यह शीशा ढालने की कोशिश करते हो? मैंने सारी हूण सेनाओं को मालवे की ओर बढ़ने की आज्ञा दे दी है। मैं मालवे में उसके नागरिकों से अधिक सैनिक फैला देना चाहता हूँ। मैं इस बार उन सबको कत्ल करवा देना चाहता हूँ। न रहेगा

बांस न बजेगी बांसुरी। मालवा फिर निखालिस हूण प्रदेश होगा। (पैर पटक कर) उन लोगों ने अभी हूणों का असली रूप देखा नहीं है। मैंने गान्धार को मिट्टी में मिला दिया है। तक्षशिला का नाम अब सिर्फ किताबों में मिलेगा। मैं सारे देश से बौद्धों का नामोनिशान मिटा देना चाहता हूँ।

पहला सरदार आलीजहाँ! मालवे में बौद्धों और शैवों में बड़ा एका है।

मिहिरकुल यही तो...यही तो...तुम लोग शैव होकर भी शैवों को नहीं जीत सके!

पहला सरदार कैसे जीतें? वे लोग बौद्ध, जैनी, शैव, वैष्णव सब अपने देश को प्यार करते हैं। सब लोग मालव-मातृ-भूमि को म्लेच्छ हूणों से खाली करना है।' इस नारे के आधार पर लड़ रहे हैं। वे 'मालवा की-प्रशंसा में गीत गाते हैं। वे वहाँ की नदियों की प्रशंसा करते हैं। वे वहाँ के पुराने पुरुषों को याद करते हैं और उनकी शान की रक्षा करने की कसम खाते हैं।

दूसरा सरदार और वे हमारे प्रति घृणा पैदा करने के लिये नाटक खेलते हैं। हमारे अत्याचारों का कैसा बुरा नतीजा हुआ, यह दिखाते हैं। उन्होंने कवियों, औरतों और नाचने वालों के गिरोह बनाये हैं। वे हर वक्त घूमते रहते हैं और हमारे खिलाफ़ जनता को भड़काते रहते हैं।

मिहिरकुल और तुम देखते रहते हो। तुम उन्हें काट नहीं डालते।

पहला सरदार एक दो हों तो काटें। हम जैसे ही उन्हें पकड़ने को आगे बढ़ते हैं सारा नगर उनको घेर कर खड़ा हो जाता है।

मिहिरकुल तो सारे नगर को ही क्यों नहीं जलाते ?

पहला सरदार जलाते हैं जहाँपनाह ! पर क्या करें हमारी फौजें आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हटती जाती हैं। आगे से, पीछे से, इधर से, उधर से, न जाने कहाँ से आकर वे हम पर टूट पड़ते हैं और फिर अपना काम कर, बिजली की तरह ग़ायब हो जाते हैं।

मिहिरकुल तो तुम कहना चाहते हो कि वह सब काम आदमी का न होकर किसी देवता या फरिश्ते का है ? (ज़ोर से हँसता है) मिहिरकुल ने सैंकड़ों देवताओं की गरदनें मरोड़ डाली हैं। उसे देवादिदेव महादेव पशुपति का आशीर्वाद प्राप्त है।

पहला सरदार आलीजहाँ ठीक फरमाते हैं, पर त्रिशूलधारी महादेव उस ओर से भी लड़ते हैं। उन्हीं का नाम लेकर मुट्ठी भर मालव सैनिकों ने हमको घेर कर हमारे सब हथियार लूट लिये थे। जब से यशोधर्मन ने मालव नरेश और हमारे सेनापति को पराजित किया है तब से वे लोग उसकी तलवार में भवानी का निवास मानने लगे हैं।

मिहिरकुल मानने दो। मैं अभी उन्हें ठीक कर दूँगा। मैं भी एक रास्ता जानता हूँ। मैंने शैव गुरु को बुलाया है ! उन्हें आने दो...

पहला सरदार उनका आप क्या करेंगे ?

दूसरा सरदार वे क्या कर सकते हैं आलीजहाँ ! वे तो यशोधर्मन के इशारे पर नाचते हैं।

मिहिरकुल आने दो, देखा जायगा।

[कई क्षण वह फिर मौन रहता है। फिर सहसा गरदन उठा कर बोलने लगता है।]

मिहिरकुल तुम किसी आर्य औरत को अपनी ओर नहीं कर सके ?

पहला सरदार आर्य लोग शस्त्र के डर से कभी किसी की ओर नहीं होते। हमारे पास उसके अलावा और है ही क्या ?

दूसरा सरदार और आलीजहाँ ! हथियार का काम काटना है, जोड़ना नहीं। इसीलिये हूण लोग जोड़ना नहीं जानते।

मिहिरकुल (क्रोध से कड़क कर) बन्द करो यह बकवास। इतनी देर से मैं तुम्हारी बातें सुन रहा था तो तुमने समझा कि मैं अपनी नीति पलट दूँगा ! मैं दुर्बलहृदय सम्राट् तोरमाण की नीति अपनाऊँगा ! यह उसी की नीति का नतीजा है कि आज हूणों को पीछे हटना पड़ रहा है।

पहला सरदार आलीजहाँ माफ करें, अगर आप उनकी नीति को मान लेते तो...

मिहिरकुल मैं कहता हूँ चुप हो जाओ ! मैं वह नाम नहीं सुनना चाहता। उसने अपना धर्म छोड़ा। उसने अपना स्वभाव छोड़ा। वह कहा करता था कि आर्यों पर शासन करने के लिये आर्यों जैसा बनना चाहिये...

दूसरा सरदार वे ठीक कहा करते थे, आलीजहाँ !

मिहिरकुल क्या कहा, वे ठीक कहते थे ! (दांत पीस कर) तुम्हारी इतनी हिम्मत ! तुम मेरे सामने मेरा विरोध कर सको ! किसी का बन कर उसपर शासन करना कायरों का काम है। वीर पुरुष दूसरों को अपना बना कर उन पर शासन करते हैं।

पहला सरदार लेकिन हथियार से किसी को अपना नहीं बनाया जा सकता...

मिहिरकुल कैसे नहीं बनाया जा सकता ! (तलवार खींच कर) बोलो तुम तोरमाण का रास्ता पसन्द करते हो या मेरा ? (क्षणिक सन्नाटा, सबकी दृष्टि उन सरदारों पर जाती है)

पहला सरदार
दूसरा सरदार { एक साथ } सम्राट् ! तोरमाण का रास्ता ही सही रास्ता है !

[सुन कर सब ठगे से रह जाते हैं । मिहिरकुल कांप कर पीछे हट जाता है, फिर क्रुद्ध होकर आगे बढ़ता है, तलवार उठाता है, फिर ठिठक कर चीखता है]

मिहिरकुल तुम...अब भी...अब भी तोरमाण के रास्ते को ठीक समझते हो ! गद्दारो ! कमीनो! अब मैं समझा क्यों हमारी फौजें पीछे हट रही हैं। लो मैं तुम्हें मजा चखाता हूँ। (आगे बढ़ता है, पर फिर तलवार झुका लेता है) पर नहीं, मैं अपनी तलवार बाग़ियों के गन्दे ख़ून से नापाक नहीं करूँगा। सैनिको, इन दोनों को अभी ले जाकर हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवा दो और इनके सिर काट कर मेरे पास ले आओ। (सैनिक डरते डरते आगे बढ़ते हैं) डरते क्यों हो ? आगे बढ़ो....बढ़ो !

सरदार डरो नहीं सिपाहियो ! आलीजहाँ का हुक्म मानना तुम्हारा फर्ज़ है ! यकीन रखो, हम तैयार हैं।

[सिपाही आगे बढ़ कर उन्हें बांध लेते हैं। मिहिरकुल पहले तो चकित सा देखता है फिर अट्टहास कर उठता है।]

मिहिरकुल ढोंगी कहीं के ! आस्तीन के सांप ! आर्यों की होड़ कटाते हैं ! तुम जैसों की वजह से ही मुझे बार बार आगे बढ़ कर पीछे हटना पड़ा है ।

[वे लोग जाते हैं और दो क्षण बाद एक हूण सैनिक शैव गुरु के साथ वहाँ प्रवेश करता है। मिहिरकुल सहसा उन्हें देख कर आगे बढ़ता है और नमस्कार करके आसन पर बैठाता है।]

सैनिक आलीजहाँ ! शैव गुरु हाज़िर हैं ।

मिहिरकुल आइये . आइये गुरु साहब, इधर तशरीफ रखिये । हं...हं...हं...इधर ! कहिये आपका काम ठीक चलता है ? पूजा-पाठ हमेशा की तरह होता है ? आपको कोई कष्ट तो नहीं है ?

शैवगुरु कष्ट तो मानने से होता है हूण सम्राट् ! पशुपति कष्टों को दूर करने वाले हैं । हलाहल को कण्ठ में धारण कर ही वे विश्व का कल्याण करते हैं । श्मशान उनका निवासस्थान है ।

मिहिरकुल इसीलिये तो मैं इस देश को श्मशान बनाता जा रहा हूँ ।

शैवगुरु हूण सम्राट् ! महादेव श्मशान में इसीलिये रहते हैं कि शेष संसार नगरों में निवास करे । परन्तु आप तो अपने सुख के लिये बसों हुओं को उजाड़ते हैं ।

मिहिरकुल (हँसाता है) हं, हं, हं, गुरुदेव । महादेव देवाधिदेव हैं । वे सब कुछ कर सकते हैं । उन्हीं की कृपा से मैं आज सम्राट् हूँ । आप उनके उपासक हैं और मैं भी आपकी सहायता की आशा करता हूँ शैवगुरु ।

शैवगुरु सहायता तो भगवान शिव ही कर सकते हैं, सम्राट् !

मिहिरकुल फिर भी आपके हाथ में बहुत कुछ है।

शैवगुरु मनुष्य के हाथ में बहुत कुछ है यह समझना ही एक बड़ा भ्रम है। वह तो देव के हाथ का एक साधारण यंत्रमात्र है, लेकिन फिर भी आप कहिये, क्या चाहते हैं ?

मिहिरकुल मैं आपकी कृपा चाहता हूँ। आपकी सहायता चाहता हूँ, मैं आपके शत्रु बौद्ध धर्म को...

शैवगुरु सम्राट्, बौद्ध धर्म मेरा शत्रु नहीं है।

मिहिरकुल मेरा मतलब था कि बौद्धधर्म शैवमत का शत्रु है।

शैवगुरु वह भी नहीं, सम्राट् ! वे दो विचारधाराएँ हैं। दो हैं इसीलिये शत्रु नहीं हो सकती हैं।

मिहिरकुल शैवगुरु ! मुझे आशा थी आप सब कुछ समझते हैं, पर मैं देखता हूँ कि आप पर किसी का रंग चढ़ चुका है।

शैवगुरु सम्राट् ने ठीक समझा। मुझ पर देवाधिदेव महादेव का रंग चढ़ चुका है। वे भोले बाबा सबका कल्याण करने वाले शिव हैं।

मिहिरकुल (तेज़) शैवगुरु !

शैवगुरु सम्राट् को क्रोध आ गया ! क्रोध धर्म का शत्रु है।

मिहिरकुल लेकिन जब धर्म पर संकट आया हो क्रोध ही उसकी रक्षा करता है।

शैवगुरु क्रोध कभी किसी की रक्षा नहीं करता हूण सम्राट् ! और धर्म पर कभी संकट नहीं आता।

मिहिरकुल शैवगुरु सावधान ! हूण सम्राट् ने शब्दों का जाल बुनना नहीं सीखा।

शैवगुरु — भाषा शब्दों का जाल नहीं तो और क्या है हूण सम्राट् ? उसे अस्वीकार करके तो तुम अपने को प्रगट भी नहीं कर सकोगे !

मिहिरकुल — ओह...ओह...(तलवार खींचता है)

शैवगुरु — सम्राट् ने तलवार क्यों खींची ? यहां कोई शत्रु तो नहीं दिखाई देता।

मिहिरकुल — तुम मेरे शत्रु हो। बोलो मेरा साथ दोगे ? मालवे की जनता को यशोधर्मन के विरुद्ध करोगे, बोलो.... बोलो...

शैवगुरु — सम्राट् ! जिस तलवार के बल से तुम मुझसे यह सब करवा लेना चाहते हो उसकी शक्ति में क्या तुम्हारा विश्वास घट नहीं गया है ?

मिहिरकुल — कैसे घट गया है ?

शैवगुरु — कैसे क्या ! उस तलवार का प्रयोग युद्ध-भूमि में न करके सम्राट् अपने धर्मगुरु पर कर रहे हैं।

मिहिरकुल — धर्मगुरु सम्राट् के शत्रु जो हैं। सम्राट् आज हर कहीं युद्ध-भूमि समझते हैं।

शैवगुरु — सम्राट् का शिविर भी युद्ध-भूमि है तो मुझे भी तलवार खींच लेने दो। (कटार निकालता है) अब सम्राट् चाहें तो बूढ़े धर्मगुरु से दो दो हाथ कर सकते हैं।

(मिहिरकुल काँप कर पीछे हट जाता है, फिर सहसा कहता है)

मिहिरकुल — हं, हं, हं, शैवगुरु, मुझे माफ करें। उन्होंने मुझे गलत समझा। मैं तो उन्हीं के धर्म की रक्षा के

लिये युद्ध कर रहा हूँ। उनसे लड़ने की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता। मैं तो उनकी कृपा चाहता हूँ।

शैवगुरु — कृपा भगवान शिव ही करेंगे।

मिहिरकुल — लेकिन आपकी सहायता के बिना मुझे वह कृपा नहीं मिल सकेगी।

शैवगुरु — नहीं सम्राट्! मैं आपके और भगवान पशुपतिनाथ के बीच में नहीं आना चाहता। यदि आपको कुछ और काम हो तो बताइए। मैं जल्दी जाना चाहूँगा।

मिहिरकुल — (तेज होकर) इस शिविर में आकर कोई मेरी आज्ञा न माने यह असम्भव है। ऐसी हालत में वह ज़िन्दा नहीं जा सकता।

शैवगुरु — जो इतना शक्तिशाली है वह इतना डरपोक भी है। क्यों सम्राट्!

मिहिरकुल — मैं तुम से विवाद नहीं करना चाहता, शैवगुरु। सिपाहियो! इन्हें कैद कर लो। (सिपाही झिझकते हैं)। आगे बढ़ो...देखते क्या हो...बढ़ो आगे नहीं तो तुम्हें भी अभी यमपुर भेजता हूँ।

शैवगुरु — क्यों बेचारों को कष्ट देते हो? जहां भी कहो वहां मैं जाने को तैयार हूँ। चलो सिपाहियो!

(आगे आगे शैवगुरु और पीछे पीछे मूर्तिवत् सैनिक जाते हैं। मिहिरकुल भयातुर उन्हें जाते देखता है। कई क्षण देखता रहता है, फिर फुसफुसाता है।)

मिहिरकुल — यह दाव भी खाली गया। न मेरी चोंच चल पाये न धर्मगुरु। नारी ने भी विश्वासघात करने से

इन्कार कर दिया। यह कैसा जादू है कैसा देशप्रेम है! अगर ऐसा पहले होता तो हम कैसे यहाँ आ पाते ! यदि अब यह सारे देश में फैल गया तो कैसे टिक सकेंगे! तो क्या करूँ...हाँ, क्या करूँ...कुछ तो करना ही होगा। युद्ध करने से पूर्व उसकी शक्ति को तोड़ना होगा। हाँ, तोड़ना होगा पर कैसे ... कैसे भी... हाँ ...नहीं...नहीं नहीं...यह नहीं...हूँ...हूँ— हाँ, यह हो सकता है। यह ठीक है (हँसी) हाँ, यह ठीक है, बस अभी जाता हूँ। अरे जाना कहां है! यह मधुबाला तो यहीं है। इसके हाथ कवि वसुमित्र की पत्नी भारती को चिट्ठी भेजता हूँ। उस पर शक तो वे लोग करते ही होंगे। अब उनको सबूत भी मिल जायेगा और वे उसको निकाल बाहर करेंगे। उस दुष्टा को अच्छा फल मिलेगा ! (अट्टहास) और कवि का दिल टूट जायेगा और ...बस...बस अभी मालवा से चिट्ठी लिखता हूँ।

[शीघ्रता से आगे बढ़ता है कि सामने से एक हूण युवती आ जाती है। आयु लगभग बीस वर्ष। श्वेत वर्ण, नक्श तीखे है। आँखें छोटी होकर भी तेजपूर्ण है। नाक भी चपटी कम है। मुख पर सौम्यता है। वेशभूषा पर भी आर्यों का प्रभाव है। घाघरा और कंचुक पहने है। केशों में पुष्पमाला है। वह तेजी से आती है। दोनों टकरा जाते है।

शाहज़ादी — पिता !

मिहिरकुल — तू···तू क्यों आई ?

शाहज़ादी — चली आई। एक बात पूछनी थी !

मिहिरकुल क्या बात पूछनी थी ?

शाहज़ादी आपने शैवगुरु को कैद किया है ?

मिहिरकुल लड़की, तुझे इन बातों से क्या मतलब ?

शाहज़ादी जिन बातों से मेरे पिता को मतलब है, उनसे मुझे भी मतलब है ।

मिहिरकुल शाहज़ादी तू .... तू बहुत सिर चढ़ गई है । चल परे हट, मेरे रास्ते से ।

शाहज़ादी नहीं पिता ! मैं इस रास्ते से नहीं हटूंगी । यह मेरे पिता का रास्ता है ।

मिहिरकुल शाहज़ादी ···· शाहज़ादी ! बहुत मुंहज़ोर न बन । मैं सब जानता हूँ तू क्यों आई है ।

शाहज़ादी पिता अपनी बेटी की बात न जानेगा तो और कौन जानेगा ! मेरे अच्छे पिता ! शैव गुरु को छोड़ दो । उनको सताने से पशुपति नाराज़ हो जायेंगे ।

मिहिरकुल (चीखकर) लड़की ! राजकाज में दख़ल देना औरतों का काम नहीं है । शैव गुरु मेरा दुश्मन है । दुश्मन को सूली पर चढ़ाया जाता है, छोड़ा नहीं जाता ।

शाहज़ादी पिता...पिता ! आप उन्हें सूली पर चढ़ावेंगे ! नहीं, नहीं, ऐसा न करिये, बग़ावत हो जायेगी ।

मिहिरकुल हो जाने दो । मिहिरकुल इन बातों से नहीं डरता । वह क़यामत से नहीं डरता । क़यामत उससे डरती है ।

शाहज़ादी पिता ! मैं क़यामत की बात नहीं करती । मैं बग़ावत की बात कहती हूँ । रियाया आपके ख़िलाफ़ उठ खड़ी

हुई है। आप सबको छोड़ दीजिए और बाबा के रास्ते को अपनाइये ....

मिहिरकुल (गरज कर) ओह गुस्ताख़ लड़की! तेरी इतनी हिम्मत ... [उसे पकड़ कर खींचता है] चल अपनी माँ के पास। मैं उससे पूछूंगा कि इस लड़की को इतनी आज़ादी क्यों दी है। मैं तुझे कैदख़ाने में डलवाऊँगा। मैं अभी तेरी शादी करूँगा।

शाहज़ादी पिता ... पिता ... मैं ठीक कहती हूँ। मैं अपने पिता के भले के लिये कहती हूँ।

[शीघ्रता से खींचता हुआ ले जाता है। धीरे धीरे शाहज़ादी का स्वर मौन होने लगता है। तभी मधुबाला सहसा मुस्करा पड़ती है। फिर एकदम गम्भीर होती है और फिर मुस्कराती है। परदा गिरता जाता है।]

दूसरा दृश्य

[दिन ढल चुका है। सूरज की किरणें शान्त होकर मालव भूमि से विदा मांग रही हैं। एक बस्ती से कुछ हट कर मार्ग से दूर पुराने मन्दिर के पास कुछ मालव सैनिक बैठे हैं। पर वे मंच से बाहर हैं। मंच पर तो देवी आनन्दी उद्विग्न भाव से टहल रही हैं। रह रह कर पश्चिम दिशा में देख लेती हैं। एकाएक इंगित से सैनिक को बुलाती हैं। सैनिक आता है।]

आनन्दी — क्यों सैनिक। तुम्हें ठीक याद है न यही स्थान है ?

सैनिक — हाँ देवी ! मैं इस स्थान को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। कुमार कीर्तिवर्मा इस स्थान को देख गये हैं।

आनन्दी — पर समय बहुत हो गया। उन्होंने क्या कहा था ?

सैनिक — कहा था कि संध्या होने तक सब लोग यहीं पर आयेंगे।

आनन्दी — जानते हो हूण सेना जहाँ पर ठहरी है वह स्थान कितनी दूर है ?

सैनिक — दूर कहाँ ! पास ही तो चर्मवती के उस पार उनका डेरा है।

आनन्दी — पास ही है ! कितनी पास ?

सैनिक — आधे दिन का मार्ग होगा, देवी।

आनन्दी — हूँ।

[कह कर फिर पूर्वस्थान पर आकर घूमने लगती है। कई क्षण घूमती रहती है। मुख पर अनेक भाव आते और जाते हैं। कई बार चौंकती है और फिर सहसा फुसफुसा उठती है।]

आनन्दो (स्वगत) **कहां से कहां पहुँच गई! कहां वह शास्त्र और साधन का जीवन! कहाँ यह अनवरत संघर्ष, युद्ध, कटार और रक्त! रक्त, हाँ रक्त! मैं रक्त की प्यासी हूँ। मैं हूणों के रक्त की प्यासी हूँ। उन हूणों के जिन्होंने....जिन्होंने बिहारों को ध्वंस किया, जिन्होंने हत्याएँ कीं, जिन्होंने नारियों का घोर अपमान किया। जिन्होंने... वे पापी, राक्षस, हत्यारे, नीच...** (साँस तेज़ी से चलती है) **लेकिन... लेकिन वे...वे ही मेरे...मेरे...नहीं नहीं, मैं नहीं सोचूँगी। मैं उनके अत्याचारों की बातों को नहीं सोचूंगी।** (धीमा स्वर) **माँ के हृदय शान्त! शान्त माँ की ममता** (एकदम) **माँ! कैसी माँ! मैं उस माँ का गला घोंट दूंगी। मैं हूणों का नाश कर दूंगी। मैं प्रतिशोध की ज्वाला हूँ। मैं प्रतिशोध हूँ।** (स्वर कुछ तेज़ हो जाता है। वह स्वयं चौंक पड़ती है) **ओह! मैं कैसी पागल हो जाती हूँ? मैं निश्चय क्यों नहीं कर पाती? मैं जनेन्द्र से सब कुछ कह क्यों नहीं देती? वे कितने वीर हैं, कितने सौम्य हैं! कितने सुन्दर हैं! पर उनके सामने जाते ही मेरा साहस जवाब दे जाता है। मैं काँप उठती हूँ। वे देवता, पवित्र और महान्, मैं निर्माल्य, पतिता और क्षुद्र** (एकदम) **नहीं...नहीं मैं पतिता**

नहीं हूँ....मैं पति....नहीं हूँ...(शान्त) हाँ, मैं पतिता नहीं हूँ। मैं उनसे सब कुछ कहूँगी, पर तभी जब युद्ध शान्त हो चुकेगा। रणभूमि में मानव की कोमल भावनाएँ सैनिक के पैरों की ज़ंजीर बन जाती हैं। नहीं, नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगी, नहीं करूँगी, मैं अपने मन की शाँति भंग नहीं करूँगी। मैं जनेन्द्र के विजयमार्ग की संदेश-वाहिका हूँ। मैं उस मार्ग की बाधा नहीं बनूंगी। भले ही मुझे प्राण भी देने पड़ें। मैं प्राण दूँगी... प्राण दूँगी लेकिन प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने दूँगी। देश के लिए मैं सब कुछ करूँगी।

[स्वर फिर तेज़ होता है और तभी एक मालव वीर वहाँ आता है। वह साधारण सैनिक के वेश में है, आनन्दी तेज़ी से चौंकती है]

आनन्दी — कौन ?

मालववीर — (हँस कर) देवी, मैं मित्र ही हूँ।

आनन्दी — (पहचान कर, चकित) जनेन्द्र, आप ! इस वेश में, यहां !

यशोधर्मन — क्यों क्या मेरे आने जाने पर अंकुश है देवी !

आनन्दी — नहीं, नहीं तो (फिर संभल कर दृढ़ता से) हाँ, जो नेता है वह हर कहीं नहीं जा सकता।

यशोधर्मन — नेता ही हर कहीं जा सकता है, देवी। अच्छा हुआ आप एकान्त में मिल गईं।

आनन्दी — (तेज़ी से काँप कर) कुछ विशेष कार्य था ?

यशोधर्मन — हाँ देवी ! यह काम आप ही कर सकती हैं।

आनन्दी — आज्ञा जनेन्द्र !

[यशोधर्मन क्षण भर सोच में पड़ जाता है। आनन्दी एकटक उसे देखती है। सहसा दोनों की दृष्टि मिल जाती है, दोनों काँपते हैं, फिर दृष्टि झुका लेते हैं।]

यशोधर्मन (मधुर स्वर) देवी !

आनन्दी (उच्छ्वासित स्वर) जनेन्द्र ! आप...

[तभी सहसा यशोधर्मन की वाणी कठोर हो उठती है।]

यशोधर्मन देवी ! मैं आपसे एक भिक्षा मांगने आया हूँ।

आनन्दी जनेन्द्र को कवि की भाषा शोभा नहीं देती। उन्हें सैनिक की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

यशोधर्मन समझा देवी ! मैं आपसे कहने आया था कि मालवा के अन्तर में तो हूणों से इतना खतरा नहीं है लेकिन सीमावर्ती प्रदेशों में बड़ी अराजकता फैली है। क्या आप वहाँ जाकर...

आनन्दी वहां मैं अवश्य आऊँगी, लेकिन मिहिरकुल की पराजय के बाद। उससे पूर्व नहीं।

यशोधर्मन मैं आज्ञा दूं तब भी नहीं ?

आनन्दी मुझे आशा नहीं कि जनेन्द्र मन से ऐसा कह रहे हैं।

यशोधर्मन (काँप कर) देवी ! मैं समझा नहीं।

आनन्दी (दृढ़ता) जनेन्द्र अपने अन्तर की किसी दुर्बलता को छिपाना चाहते हैं।

[भेदभरी दृष्टि से उसे देखती है। वह सहसा दृष्टि झुका लेता है, पर दूसरे ही क्षण फिर स्वस्थ हो जाता है।]

यशोधर्मन यह ठीक हो तो भी मेरी आज्ञा...

आनन्दी (दृढ़ता) क्षमा करें जनेन्द्र ! दुर्बलता से प्रप्रभावित होकर दी गई आज्ञा को मान कर मैं मालवभूमि के जनेन्द्र का अपमान नहीं करना चाहती । मैं उनसे दूर नहीं जाऊंगी ।

यशोधर्मन (चकित) देवी !

[तभी हँसी—मुक्त हंसी का स्वर पास आता है । दोनों चौंक कर मुड़ते है]

आनन्दी जनेन्द्र स्वस्थ हो, प्रेमी-युगल आ रहा है ।

यशोधर्मन (स्वस्थ होकर) सच देवी ! मालवी और कीर्ति-वर्मा, दोनों कितने वीर, कितने सजग और कितने निर्भीक हैं !

आनन्दी वे दोनों एक दूसरे को प्रेम करते हैं, जनेन्द्र । यह बात कभी न भूलना ।

[मालवी और कीर्तिवर्मा का प्रवेश । दोनों का वेश बदला है । मालवी नागरिक कन्या के वेश में है, कीर्तिवर्मा मालव किसान के । दोनों आकर प्रणाम करते है । जनेन्द्र को देख कर वे कुछ चौंकते हैं । फिर एक दूसरे की ओर देख कर मुस्करा उठते हैं]

आनन्दी बड़ी देर कर दी, मालवी ।

मालवी देर इनके कारण हुई, देवी ! पूछिये ।

कीर्तिवर्मा हाँ देवी ! शैवगुरु ने आने से इन्कार कर दिया ।

आनन्दी आने से इन्कार कर दिया !

कीर्तिवर्मा हाँ देवी । जब मैं उस स्थान पर पहुँचा जहां वे कैद थे तो मैंने उन्हें समाधिस्थ पाया । समाधि टूटने की राह देखने का समय नहीं था । मैंने उन्हें

असमय में ही जगा दिया। वे काँप उठे। कई क्षण तक उन्होंने मेरा विश्वास नहीं किया। फिर जब वे समझे तो उन्होंने आने से स्पष्ट इन्कार कर दिया।

यशोधर्मन — क्या कहा?

कीर्तिवर्मा — कहा—जनेन्द्र से कह देना, 'धर्मयुद्ध में विजय बिना बलिदान के नहीं मिला करती। यज्ञ में देवता सदा बलि पाकर ही प्रसन्न होते हैं। यह भी एक यज्ञ है। मालव भूमि को अभी बहुत बलिदान देने पड़ेंगे। फिर मुझे ही उस सौभाग्य से क्यों वंचित किया जाए?'

यशोधर्मन — यह कहा आर्य ने!

कीर्तिवर्मा — और भी कहा, 'देव! मुझे अवसर मिला है कि मैं भी देश की सेवा कर सकूं। उधर लौट कर तो विशेष काम आ न सकूंगा। वृद्ध हो गया हूं। वैसे भी अन्त आने ही वाला है। अच्छा है समय पर जाकर पशु-पति को उनके नये शिष्यों की पापगाथा सुनाऊंगा।'

आनन्दी — फिर!

कीर्तिवर्मा — फिर वे मौन हो गये जैसे गहन निद्रा में समा गये हों। जब हूण सैनिक उन्हें सूली पर चढ़ाने के लिये लेने आये तो वे उसी तरह समाधिस्थ थे। बहुत जगाने पर भी न जागे। वे लोग उन्हें उसी अवस्था में ले गये।

यशोधर्मन — क्या...क्या उन्हें सूली पर चढ़ा दिया है!

कीर्तिवर्मा — यह देखने के लिये मैं वहां नहीं रुका। मधुबाला के साथ आने की बात निश्चित हो चुकी थी।

आनन्दी — (निश्वास) तो शैवगुरु नहीं आए?

यशोधर्मन — हाँ देवि ! वे हमसे जीत गए। उनका शव अब मिहिरकुल और उसकी सेना का काल होगा। (मुड़कर) लेकिन मालवी, तुमने क्या किया ?

मालवी — जनेन्द्र ! मैं यह पत्र लाई हूँ।

यशोधर्मन — कैसा पत्र ? किसने लिखा है ?

मालवी — (मुस्करा कर) हूण सम्राज्ञी ने भारती के नाम यह पत्र लिखा है।

आनन्दी — भारती के नाम ! देखूँ !

मालवी — लीजिए !

आनन्दी — (पढ़ती है) मेरी अच्छी, मेरी प्यारी भारती, मुझे तुम्हारा ख़त मिल गया था। बड़ी खुशी हुई कि तुम अपना काम बड़ी ख़ूबी से कर रही हो। इसी तरह सब भेद हमें भेजती रहो। अब हम जल्दी ही आ रहे हैं। तुम्हें मुंहमांगा इनाम मिलेगा। ख़बरदार ! एक बार भी झिझकना मत। अपनी कौम से बड़ी कोई चीज़ नहीं—असमत भी नहीं।

मल्लिका

[वह पढ़ती है मुख पर एक के बाद एक रंग आता है और जाता है। यशोधर्मन भी कुछ चौंकता है। मालवी हँस पड़ती है।]

आनन्दी — हूँ, यह बात है !

यशोधर्मन — तो मिहिरकुल भारती को तोड़ना चाहता है।

मालवी — उससे भी कुछ अधिक, जनेन्द्र।

यशोधर्मन — वह भी समझता हूँ। (हँसते हैं)

कीर्तिवर्मा — वह चाहता है कि यह पत्र आपके हाथों में पड़े और

आप उसे हूणों की गुप्तचर समझ कर सूली पर चढ़ा दें।

आनन्दी — यही मतलब है। बड़ा कूटनीति-कुशल है।

यशोधर्मन — मूर्ख है। आर्यों की रण-नीति नहीं जानता। आर्य इस प्रकार अन्धे होकर प्रतिशोध नहीं लिया करते। वे वीर हैं। और वीर वीरता का अपमान नहीं कर सकते।

मालवी — ठीक है जनेन्द्र! पर उसका विचार था कि यह पत्र भारती के प्रति शंका पैदा कर देगा। वह सूली पर चढ़े या न चढ़े पर उसका अपमान होगा और कवि उस अपमान को न सह सकेगा और....

यशोधर्मन — और मालवों में गृह-युद्ध शुरू हो जायगा। बहुत दूर की सोची उस चूंधी आँखों वाले ने।

[हँसता है, सब हँसते हैं]

आनन्दी — (पत्र को फाड़ती हुई) वह नहीं जानता कि चर्मवती के उस पार उससे अधिक बुद्धि वाले लोग बसते हैं।

मालवी — उसकी जैसी चूँधी आँखें हैं वैसी ही मन्द बुद्धि है।

कीर्तिवर्मा — मालवी! शत्रु की बुद्धि का तिरस्कार पराजय को न्योता देना है।

यशोधर्मन — (सहसा कीर्तिवर्मा को देख कर) ठीक कहा कीर्ति-वर्मा, तुमने ठीक कहा! अच्छा! मुझे देर हो रही है। वे सब मेरी राह देख रहे होंगे। जाने से पहले मुझे बताओ कि क्या हमारी सेनाएँ उस पार पहुँच चुकी हैं?

कीर्तिवर्मा — वह तो भूल ही गया था जनेन्द्र! हूण सेना के चारों ओर हमारी सेना इस तरह फैल गई है जिस तरह

टापू के चारों ओर जल फैल जाता है। अन्तर इतना है कि जल दिखाई देता है पर हमारी सेना मालव किसानों और नागरिकों के वेश में छिपी हुई है। वैसे सरदार नरवर्धन और सेनापति रविवर्मा उनके संरक्षक हैं। जनेन्द्र! चिन्ता न करें, हूणों के प्रति घृणा जड़ जमा चुकी है।

यशोधर्मन — जानता हूँ कुमार! मुझे उस बात की चिन्ता नहीं है, पर मैं चाहता हूँ कि हूणों को नदी पार करने का अवसर न दिया जाय।

कीर्तिवर्मा — और जिस समय वे बीच में हों तो दोनों ओर से आक्रमण कर दिया जाय।

यशोधर्मन — हाँ, यही।

कीर्तिवर्मा — यही सेनापति रविवर्मा का विचार है जनेन्द्र! उन्होंने इस बात का प्रबन्ध भी कर लिया है। हम भी प्रस्तुत हैं।

यशोधर्मन — तो ठीक है, मैं चला।

आनन्दी — जाने से पूर्व मेरी एक प्रार्थना है जनेन्द्र।

यशोधर्मन — (मुड़ कर) कहो देवी!

आनन्दी — मैं अब चर्मवती के उस पार जाना चाहती हूँ।

यशोधर्मन — उस पार!

आनन्दी — हाँ।

यशोधर्मन — देवी कहीं भी जाने को स्वतन्त्र हैं।

आनन्दी — धन्यवाद! और मैं शस्त्र भी धारण करना चाहती हूँ।

यशोधर्मन — समझा नहीं। वह तो सब करते हैं।

आनन्दी — मैं सेना में पद चाहती हूँ!

यशोधर्मन — देवी !

आनन्दी — हाँ जनेन्द्र ! मुझे अधिकार चाहिये । हूण सेना में घुस कर नियमित युद्ध करने का अधिकार !

यशोधर्मन — (क्षण भर मौन रहते हैं । मालवी और कीर्तिवर्मा ठगे से उन्हें देखते हैं ।)

आनन्दी — जनेन्द्र क्या सोच रहे हैं ?

यशोधर्मन — यही कि बौद्ध विहार में ध्यान करने वाली भिक्षुणी कहाँ से कहाँ पहुँच गई !

आनन्दी — जनेन्द्र ! बौद्धों को शस्त्रों से घृणा नहीं है । परम-भागवत चन्द्रगुप्त द्वितीय का सेनापति आम्रकार्दव भी बौद्ध था । पर मैं बौद्ध विहारों के पुनर्निर्माण के लिये ही शस्त्र उठा रही हूँ, जनेन्द्र ! मैं उस महा-नाश का प्रतिशोध चाहती हूँ ।

यशोधर्मन — (सहसा) ठीक है देवी ! आप जो चाहें करने को स्वतन्त्र हैं ।

[शीघ्रता से आगे बढ़ता है । मालवी भी बढ़ती है]

मालवी — जनेन्द्र ! मैं भी....

यशोधर्मन — (दृढ़ता) मालवी और कीर्तिवर्मा, तुम्हें मेरे साथ चलना है, अभी इसी क्षण !

मालवी — जो आज्ञा ।

कीर्तिवर्मा — आज्ञा जनेन्द्र !

[आगे आगे यशोधर्मन, उसके पीछे मालवी और कीर्ति-वर्मा जाते हैं । आनन्दी उन्हें देखती है । उसकी दृष्टि स्थिर है । शरीर स्थिर है । वह कई क्षण इसी तरह रहती है, फिर तेज़ी से फुसफुसाती है]

आनन्दी — मैं जो चाहूं करने को स्वतन्त्र हूँ। मैं जो चाहूं करने को स्वतन्त्र हूँ....शायद....लेकिन....वह बात.... वह जनेन्द्र से....पुकारूँ....(एक दम) नहीं, नहीं, मैं नहीं कहूंगी, नहीं कह सकूँगी। शान्त, माँ के हृदय शान्त...मैं स्वतन्त्र नहीं हूं नहीं...नहीं मैं स्वतन्त्र नहीं हूं...मैं प्रतिशोध चाहती हूँ। मैं वही करूँगी जिससे मेरा प्रतिशोध पूरा हो। जिससे हूणों का नाश हो। प्रतिशोध के सामने मेरे हृदय को शान्त रहना पड़ेगा। शान्त !....तथागत के मार्ग की भिक्षुणी शान्त...

[सहसा सैनिक आगे बढ़ आता है]

सैनिक — देवी ! अब किधर जाने का विचार है ?

आनन्दी — (चौंककर) एँ ... (देख कर संभलती है) ओ तुम...देखो सैनिक, हम उस पार जायेंगे।

सैनिक — उस पार !

आनन्दी — हाँ। क्यों डर लगता है ?

सैनिक — (तलवार खींच कर) डर ! देवी, जनेन्द्र के सैनिकों से डर स्वयं डरता है। आइए।

आनन्दी — (स्वस्थ, प्रसन्न होकर) चलो भाई। तुम्हें पाकर जनेन्द्र धन्य हैं।

(वे दोनों जाते हैं और परदा गिरता है।)

●

तीसरा दृश्य

[दशपुर की राजसभा का दृश्य। परिव्राजक महाराज के युग से उसमें बहुत परिवर्तन हो चुका है। न अब वहाँ वैभव-विलास की गन्ध है, न अहंकार और अत्याचार का प्रदर्शन। वह एक मंत्रणा भवन बन गया है, जहां दस-पन्द्रह आसन्दियाँ बिछी रहती हैं और साधारणतया प्रत्येक को वहां आने की आज्ञा है। यूं गुप्तचर पग पग अपना काम करते है। परदा उठने पर वहाँ कुछ लोग आते और कुछ जाते हैं। सारी सभा पर जैसे सुगन्धित धूम उठ उठ कर छा रहा है। आने जाने वाले भी उसी की तरह झूमते हैं और मुस्कराते हैं। व्यग्रता और चिन्ता किसी के मुख पर नहीं है। सबसे पहले वहां कवि वसुमित्र और सेनापति रविवर्मा प्रवेश करते हैं। सीधे आकर वे बैठ नहीं जाते बल्कि एक पार्श्व में खड़े हो कर बातें करने लगते हैं।]

वसुमित्र — **सेनापति, सच बताना, तुम्हें अचरज नहीं होता ?**

रविवर्मा — **किस बात का कवि ?**

वसुमित्र — **इस बात का कि मसिजीवी कवि असि का प्रयोग करना जानता है।**

रविवर्मा — **मन की बात कहूँगा कवि। अचरज तो हुआ था पर जब हो चुका तो मुझे पता लगा कि कवि और सेनापति दोनों ही कवि और सेनापति होने से पूर्व मनुष्य**

हैं। एक जैसे मनुष्य, मालवभूमि को एक समान प्यार करने वाले, धरती माता के एक जैसे बेटे...

वसुमित्र सच सेनापति ! तुमने तो ताव की बात कह डाली। जो मालवभूमि को प्यार करता है, वह उसकी रक्षा के लिये कुछ भी कर सकता है। भला कोई बात है सेनापति ! हूण सरदार मुझे देखकर बोला—तू कौन है ? मैंने कहा—इस बात का जवाब तो भगवान ही दे सकते हैं। मैं तुम्हें अभी वहां भेज देता हूँ। इस पर सेनापति, वह बिगड़ गया। रंग तो उसका चिट्टा था पर कुछ चितकबरा था। बोला-'टर टर मत कर'। वह सुनकर मेरी कविता फूट पड़ी वैसे ही जैसे आदि कवि बाल्मीकि के कण्ठ से तब फूटी थी जब क्रौञ्च का वध हुआ था। अन्तर इतना था कि आदि कवि ने उस का विरोध किया था, मैंने समर्थन।

रविवर्मा आपने क्या कहा ?

वसुमित्र मैंने कहा—सुन हूण !

हूण-गिरा करती टर टर
आर्य-असि उड़ती फर फर
हूण गिरा करते मर मर
जय जनता की जय हर हर
(हर हर जय जय जय हर हर)

(ज़ोर से हँसता है) यह रणभूमि की कविता है सेनापति। आशुकविता !

रविवर्मा (हँस कर) आशु-कविता हो या परशु-कविता ! तुम्हारा साहस धन्य है कवि। तुम रणभूमि में भी कविता कर लेते हो।

वसुमित्र — कविता स्थान-विशेष की चिन्ता नहीं करती सेनापति, वह तो भावों की भूखी है। तुम कभी एकान्त में मुझ से मिलना। आजकल 'हूण-महाकाव्य' लिख रहा हूँ -

रविवर्मा — लेकिन कवि ! तुम्हारी भारती का क्या हाल है ?

वसुमित्र — भारती भारत में गूंज रही है, सेनापति ! अगर मेरी सलाह मानो तो एक काम करो।

रविवर्मा — क्या ?

वसुमित्र — तुम भी एक हूण रमणी से विबाह कर लो और उसका नाम रखो सन्ध्या। रवि की एक पत्नी का नाम सन्ध्या था। शनि उसी का पुत्र था।

रविवर्मा — (हँसकर) ना कवि, ना ! मुझे शनि-सी सन्तान नहीं चाहिए।

वसुमित्र — सेनापति ! यदि आज शनि हमारे पास होता तो हूण ऐसे उड़ जाते, ऐसे (चुटकी बजाता है)। उसकी शक्ति घटोत्कच से कहीं अधिक है। सोचो, पाण्डवों के पास घटोत्कच न होता तो क्या वे जीत सकते ? कभी नहीं।

रविवर्मा — (ज़ोर से हँस कर) ओ हो, अब समझा। कवि भीम बन कर घटोत्कच के पिता बनना चाहते हैं, विचार अच्छा है।

[कीर्तिवर्मा का प्रवेश]

कीर्तिवर्मा — यह कैसा अट्टहास है, काकाजी ! कवि शायद आपको अपना नया नाटक सुना रहे हैं।

रविवर्मा — इस वार कवि नाटक नहीं महाकाव्य लिख रहे हैं। उसके नेता भी वे स्वयं हैं। मँझले पाण्डव भीम की

तरह हिडिम्बा से विवाह करके वे घटोत्कचों का निर्माण करना चाहते हैं ।

कीर्तिवर्मा विचार सुन्दर है । हमें पसन्द आया ।

वसुमित्र न न कीर्ति भइया, तुम नहीं, न, तुम नहीं, तुम इसे पसन्द न करना. नहीं तो अनर्थ हो जायगा, अनर्थ !

[मालवी का प्रवेश]

मालवी कैसा अनर्थ कवि ! किसका अनर्थ बुला रहे हो ?

वसुमित्र अर्थ का देवी ।

मालवी मैं देवी कब से हुई ?

वसुमित्र जब से देवता प्रसन्न हुए ।

मालवी (एक दम लजा जाती है) कवि ! तुम विदूषक का अभिनय अच्छा कर लेते हो ।

वसुमित्र हाय रे भाग्य ! इतना सुखद समाचार सुनाने पर भी विदूषक ही बनना पड़ा । अपना-अपना भाग्य है सेनापति ! अच्छा अब सावधान, जनेन्द्र पधारते हैं ।

[तभी जनेन्द्र यशोधर्मन, वैस सरदार नरवर्धन और सेनापति प्रवेश करते हैं ।]

यशोधर्मन अहो कवि तो यहाँ अभिनय कर रहे हैं । उधर सुना है भारती हूण सेना में कहीं खो गई ।

वसुमित्र खो नहीं गई जनेन्द्र ! भारती हूण सेना में गूँज रही है ।

[सब बैठते हैं]

मालवी सच कवि ! तुम्हारी भारती के कण्ठ में सरस्वती विराजती है । अपनी भाषा में जब उसने गाया तो न समझ कर भी मैं सब कुछ समझ गई । मुझे रोमांच हो आया ।

वसुमित्र देवी ! पक्षियों की भाषा न जान कर भी हम उनके गान से आत्म विभोर हो उठते हैं । पर जनेन्द्र ! कविता-अध्याय यहीं समाप्त करके मैं युद्ध काण्ड की कथा शुरू करना चाहूंगा।

यशोधर्मन उसी के लिये हम लोग इकट्ठे हुए हैं। शायद आज के बाद फिर हम शीघ्र ही एक स्थान पर न मिलेंगे। इसी लिये मैंने सबको बुला भेजा है । उस दिन चर्मवती के तट पर मार खाकर हूण का दर्प नाग की तरह फुँकार उठा है । उसने असंख्य हूण सैनिकों को लेकर समूचे मालवे को चारों ओर से घेरने का जाल रचा है ।

कीर्तिवर्मा जनेन्द्र ! वह जाल तो उसका अपना काल बनेगा, क्योंकि बहुसंख्या का अर्थ सदा दुर्बलता होता है। उसकी सेना में शेर नहीं, केवल गीदड़ हैं ।

वसुमित्र न, न, कुमार, गीदड़ नहीं, भेड़ें हैं । जो समय असमय में—में करती रहती हैं । और जब चलती हैं तो आँखें मूँद कर अपने आगे चलने वाले के पीछे चलती हैं ।

यशोधर्मन अच्छा कवि ! यह तो हुआ। अब यह बताओ कि तुम किस दिशा में प्रयाण करना चाहते हो ?

वसुमित्र यत्र, तत्र, सर्वत्र जनेन्द्र ! कवि सर्वत्र है । उसे दिशाओं में क्यों बांधते हो ?

यशोधर्मन तो अभी तुम मेरे साथ यहीं चर्मवती के तट पर रुको !

वसुमित्र तथास्तु ! कल्याण हो महाभाग ! मैं चला। महा-काव्य के छन्द फूट रहे हैं ।

[कवि का जाना]

यशोधर्मन — सेनापति रविवर्मा ! आप तो मालवे की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर जा ही रहे हैं। महाराज द्रोणसिंह का सन्देश भी आप सुन चुके हैं। मुझे आशा है कि सौराष्ट्र की जनता भी शीघ्र ही मालवे की जनता की तरह हूणों के विरुद्ध उठ खड़ी होगी।

रविवर्मा — समाचार तो इस बात की पुष्टि करते हैं, फिर भी मैं चाहता हूँ कि भारती मेरे साथ चले तो ..

यशोधर्मन — भारती नहीं सेनापति ! मालवी कहो ! क्यों मालवी !

मालवी — जनेन्द्र की इच्छा मेरे लिये ईश्वर का आदेश है। मैं तैयार हूँ।

यशोधर्मन — तुमसे यही सुन सकता था। अच्छा कीर्तिवर्मा ! तुम उत्तर-पूर्व की सीमा तक जहाँ तुम्हारा अपना देश है, जाना पसन्द करोगे !

कीर्तिवर्मा — जनेन्द्र जहाँ कहेंगे, वहाँ कीर्तिवर्मा क्यों न जा सकेगा ? सारा भारत उसका देश है, जनेन्द्र !

यशोधर्मन — हाँ कुमार, सारा देश हमारा देश है। अभी समाचार आए हैं कि पंचनद प्रान्त और स्थाणेश्वर की जनता हूणों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई है।

नरवर्धन — सुना है जनेन्द्र ! इसलिये मेरी इच्छा है कि आप मुझे उस ओर का भार दे दें।

यशोधर्मन — मुझे कोई आपत्ति नहीं है, सामन्त ! आप उधर जाने की तैयारी करें और चाहें तो भारती को साथ ले लें। उधर के मार्ग उसके सुपरिचित हैं।

नरवर्धन — अवश्य जनेन्द्र ! मैं समझता हूँ कि मैं भारती से लाभ उठा सकता हूँ।

यशोधर्मन — जाने से पूर्व आप उन सब बातों पर फिर विचार कर लीजिए जो कवि ने सुझाई थीं। मैं प्रायः उनसे सहमत हूं। जो हूण यहाँ बसना चाहें उन्हें पूरी सुविधा दी जाए, पर तभी जब वे भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार करें। उनकी राजनैतिक सत्ता किसी भी अवस्था में स्थिर नहीं रहनी चाहिये। और यह भी कि उनसे सामाजिक सम्बन्ध करने में भारतवासियों को हिचकना नहीं चाहिये। यह जो कहीं-कहीं वर्ण-धर्म की रक्षा की पुकार उठी है उसको मैं अनुचित मानता हूं। समानता मेरा मंत्र है, पर समानता वही जो स्वाभिमान और गौरव से पूर्ण है।

नरवर्धन — ठीक है जनेन्द्र! हम लोग इस बात को मानते हैं।

कीर्तिवर्मा — हम लोगों में इस बात को लेकर कई दल बन गये हैं पर विश्वास रखिये जनेन्द्र! हूणों की शक्ति तोड़ कर हम आर्य जाति की परम्परा के अनुसार ही बर्ताव करेंगे।

मालवी — आर्य जाति किसी को विदेशी नहीं मानती, जनेन्द्र! शर्त यही है कि वह भारतीयता का उपासक हो। देवपुत्र कनिष्क का उदाहरण हमारे सामने है।

रविवर्मा — इतिहास में उदाहरणों की कमी नहीं है मालवी, पर उनकी इतनी चिन्ता क्यों? हमने जो नीति बनाई है उसका हम पालन करेंगे।

समवेत स्वर — निस्सन्देह हम करेंगे।

रविवर्मा — अच्छा जनेन्द्र! मैं आज्ञा चाहूँगा।

कीर्तिवर्मा — और मैं भी, जनेन्द्र!

मालवी — मुझे भी जाना है, आर्य !

नरवर्धन — और मुझे भी, जनेन्द्र !

यशोधर्मन — अच्छा है, जिन्हें जाना है वे जाएँ पर, यात्रा पर निकलने से पूर्व आप लोग अन्तिम बार मुझसे भेंट करने का प्रयत्न करेंगे तो मैं अनुगृहीत हूँगा।

सब — अवश्य जनेन्द्र !

यशोधर्मन — आप सब की जय हो ! आपकी जय में मालव की जय है।

[सब जाते है, कवि का स्वर गूंजता है]

स्वर — हम मालव हैं, विद्युत की तरह प्रबल गतिमान हैं

परशुराम की वीर भूमि पर,
हूणों का हुंकार भरा स्वर,
सुन कर भी क्या मौन रहेंगे,
हम महान् मालव प्रलयंकर।

[स्वर गूंजता रहता है। यशोधर्मन अकेला रह जाता है। कई क्षण वह मौन उसे सुनता है फिर फुसफुसा उठता है।]

यशोधर्मन — कवि को मालवभूमि से कितना प्रेम है ! भारती से भी बढ़ कर। कवि भारती को भी बहुत प्यार करता है पर मैंने उसे कवि से अलग कर दिया। कौन जाने वे अब फिर मिलेंगे भी या नहीं। हाँ, कौन जानता है ! पर यदि वे प्रेम करते हैं तो अवश्य मिलेंगे क्योंकि प्रेम का कवच दोनों को ज़िन्दा रखेगा। भारती और वसुमित्र दोनों को और मालवी तथा कीर्तिवर्मा को भी (हँसता है)। कैसा है मानव-मन। प्रेम-परीक्षा के लिये मालवी ने कीर्ति को कन्नौज से बुला भेजा। अद्भुत वीर हैं ये मौखरी भी। जी तोड़ कर

लड़ते हैं। (स्वर पास आता है। कवि इधर ही आरहे हैं, छिप जाऊँ।)

[कवि का प्रवेश, किसी को न देख कर]

वसुमित्र — एं कोई नहीं ! कहाँ गये ! 'हंसा चुग गये खेत'। हाँ भाई, युद्धभूमि है, न जाने किधर से पुकार उठी हो, पर सुना है मेरी भारती को जनेन्द्र ने सामन्त नरवर्धन के साथ भेज दिया है। पंचनद प्रदेश की ओर...ठीक है उसे जाना पड़ेगा। जाना ही चाहिये पर...पर मुझे यह कैसा दुःख होता है ! ऊँहूँ होता होगा। हुआ ही करता है और सच पूछो तो दुःख होना ही चाहिये। वह दिल क्या जो वियोग से तड़प न उठे और वह वियोग ही क्या जो प्रगट हो जाये। अपनी पीड़ा दूसरों को क्यों दी जाए। लोग तो दूसरों की पीड़ा भी पी जाते हैं। शंकर ने हलाहल कण्ठ में रोके रखा। नीलकण्ठ बन गए।

[यशोधर्मन प्रकट होकर]

यशोधर्मन — तुम पीड़कण्ठ बन जाओ, कवि !

वसुमित्र — ओह जनेन्द्र ! आपने सुन लिया ! मैं तो आर्य को खोजने आया था। देवी आनन्दी का कुछ समाचार नहीं मिला ?

यशोधर्मन — देवी आनन्दी पर उज्जयिनी की रक्षा का भार है वसु !

वसुमित्र — अकेले आनन्दी पर !

यशोधर्मन — हाँ कवि !

वसुमित्र — तब तो मुझे शीघ्र ही उधर जाना पड़ेगा।

यशोधर्मन — क्यों, उनकी मदद करने !

वसुमित्र — नहीं मित्र ! महाकाव्य में उनके चरित्र का वर्णन

करने के लिये उनको लड़ते देखना आवश्यक है।

यशोधर्मन तब आओ कवि ! उनसे मिलने का प्रबन्ध करा दूं ? तुम सीमा के उस पार जा सकते हो, जा सकोगे ?

[एक ओर बढ़ते हैं, कवि-पीछे पीछे जाते हैं]

वसुमित्र क्यों न जा सकूंगा जनेन्द्र !

[उसी क्षण सहसा देवी आनन्दी एक सैनिक के साथ वहां प्रवेश करती है]

आनन्दी जनेन्द्र की जय हो ! आर्य रुकें।

[वे स्वयं ठिठक गये हैं]

वसुमित्र देवी आनन्दी ! जनेन्द्र, देवी तो यहीं आ गईं।

यशोधर्मन (चकित) देवी आप ! क्या बात है ? बैठिये आप शायद अभी चल कर आरही हैं। (बैठते हैं)

आनन्दी हाँ जनेन्द्र ! बात ही ऐसी है, बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण।

यशोधर्मन कहिये।

आनन्दी समाचार मिला है कि मिहिरकुल अपने समस्त महावीरों की असंख्य सेना लेकर कल रात को उत्तर की ओर चर्मवती पार करना चाहता है।

यशोधर्मन सच !

आनन्दी हाँ जनेन्द्र ! हूणों की शक्ति जैसी है वह प्रगट है। अपने योद्धाओं को इधर-उधर जाने से मना कर आपको उसे रोकना होगा।

वसुमित्र और उसकी शक्ति को सदा के लिये तोड़ देना होगा। देवी ठीक कहती हैं।

यशोधर्मन समाचार सचमुच भयंकर है कवि ! सबको सूचना दो और देवी आनन्दी ! क्या तुम सोचती हो कि हमें

अभी उत्तर की ओर बढ़ कर उसे इसी तट पर रोक लेना चाहिये ?

आनन्दी — निस्संदेह ! उस ओर काफी सेना है, पर विजय के लिये आक्रमण इधर से ही होना उचित है ।

यशोधर्मन — तो वह होगा, कवि ! सबको लेकर तुम अभी हमें युद्ध-शिविर में मिलो । आओ देवी !

वसुमित्र — अभी सबको लेकर आता हूँ, जनेन्द्र !

[सब जाते हैं, और परदा गिरता है ।]

चौथा दृश्य

[रंगमंच पर युद्धभूमि का दृश्य। पृष्ठभूमि में युद्ध-वाद्यों का निनाद। वीरों का युद्धघोष। अनेक योद्धाओं का इधर-उधर भागते आना। कभी हूण, कभी आर्य, कभी दोनों युद्ध करते हुए। सहसा मिहिरकुल का क्रोध से हाँफते हुए आना। साथ में हूण सेनापति भी है।]

मिहिरकुल (क्रोध से हाँफता हुआ) **सेनापति ! जितने भी सैनिक मिलें, युद्ध में झोंक दो। जिस तरह भी हो आर्यों के इस प्रहार को रोको। मार डालो, काटो किसी को ज़िन्दा मत रहने दो।** (हूण सैनिक का तेजी से प्रवेश।)

सैनिक **आलीजहाँ ! आर्यों का सरदार इधर ही आ रहा है।**

मिहिरकुल **आने दो। सेनापति, तुम छिप जाओ और सैनिको ! तुम जितने भी हो मेरे इशारे की राह देखो, मैं आज उसे ख़त्म कर देना चाहता हूँ।** (सब जाते हैं) **हाँ, उसे खत्म कर देने से इनकी जड़ कट जायेगी** (हँसता है) **मेरा दाव चल गया, वह इधर आ फंसा।** (देख कर) **अहा आ हा हा ! मेरी फौज ने उसे कैसे घेरा है। वह इधर ही आ सकता है। वह इधर ही आ सकता है। लेकिन कैसे मौत की तरह लड़ रहा है ! उसकी तलवार कैसे चमकती है। चण**

में यहाँ, क्षण में वहां, क्षण में ऊपर, क्षण में नीचे। ओह...ओह...वह आगया, वह आ गया !...

[लड़ते हुए यशोधर्मन का प्रवेश। मिहिरकुल ललकारता है।]

ठहरो यशोधर्मन ! तुम अब आगे नहीं बढ़ सकते। तुम्हारा काल आ पहुँचा है।

यशोधर्मन काल उन्हीं का आता है जो उसे याद करते हैं। ले संभल।

[मिहिरकुल वार संभाल कर प्रत्याक्रमण करता है।]

मिहिरकुल ले संभल तू। (अट्टहास) बस इसी बूते पर भारत-सम्राट् से भिड़ने चला है ! मैं कहता हूँ अब भी हथियार डाल दे।

यशोधर्मन रणभूमि में बातें नहीं की जातीं, हूण ! मर्द है, तो तलवार के जौहर दिखा। वीरों के लिए हार-जीत कोई अर्थ नहीं रखती। लड़ने की साध पूरी कर ले।

मिहिरकुल तो आजा।

[घोर युद्ध। सहसा मिहिरकुल चिल्लाता है]

दुष्ट तेरा काल आ पहुंचा है। सैनिको ! आ जाओ।

[एकदम चारों ओर से सैनिक आकर यशोधर्मन को घेर लेते है। यशोधर्मन अट्टहास करता है।)

यशोधर्मन हा हा हा ! रणभूमि में भी अपने जातिगत स्वभाव से नहीं चूके, हूण !

मिहिरकुल रणभूमि में की गई कोई बात धोखा नहीं कही जा सकती। सैनिको ! मार डालो इसको।

यशोधर्मन यदि संसार के सारे हूण भी आ जाएं तब भी चिन्ता नहीं।

[जैसे ही सब प्रहार करते हैं, पीछे से दो सैनिक वेश-धारी नारियाँ तलवार लिये हूणों पर टूट पड़ती हैं—घोर युद्ध]

एक नारी — **अरे हूणो ! तुम इतने नीच··· !**

दूसरी नारी — **पामर दुष्टो... !**

सेनापति — **तुम, तुम कौन ?**

पहली नारी — **तुम्हारा काल ।**

दूसरी नारी — **देवी··· देवी··· उधर जनेन्द्र घिर गये ।**

[दोनों तेज़ी से यशोधर्मन की ओर बढ़ती हैं। वे दोनों ऐसी तलवार चला रही हैं जैसे रणचण्डी हों। काली की तरह वे ढाल फेंक कर दोनों हाथों में तलवार ले लेती हैं। ठीक उसी समय मिहिरकुल यशोधर्मन पर प्रहार करता है]

मिहिरकुल — **अब नहीं बच सकता तू। ले ...।**

[तलवार उठकर गिरना चाहती है कि पहली नारी मिहिरकुल और यशोधर्मन के बीच आ जाती है]

पहली नारी — **उधर क्या देखता है, पहले मुझसे निबट ।**

[तलवार उसके वक्ष में घुस जाती है]

मिहिरकुल — (कांप कर) **कौन !**

पहली नारी — (वही कड़क) **तुम्हारा काल !**

दूसरी नारी — **तुम्हारी मौत····ले ।** (तेज़ी से कीर्तिवर्मा का सैनिकों समेत आना)

कीर्तिवर्मा — **ठहरो हूणो, दुष्टो, मैं आ गया, मैं तुम्हारा काल ।**

[हूणों का तेज़ी से भागना]

यशोधर्मन — कोई जाने न पावे। वह मिहिरकुल भागा। ठहर दुष्ट!

[आगे-आगे मिहिरकुल पीछे-पीछे यशोधर्मन का गमन। उसके पीछे पहली महिला भी तेज़ी से जाती है। रंगमंच पर कीर्तिवर्मा और दूसरी महिला रह जाते हैं]

दूसरी नारी — कुमार, तुम ठीक समय पर आये।

कीर्तिवर्मा — कौन मालवी!

मालवी — हाँ कुमार, मैं ही हूँ, पर रुको नहीं, आगे बढ़ो जनेन्द्र की रक्षा के लिये देवि आनन्दी ने जो प्रहार सहा है वह उनके वक्ष को चीर गया है।

कीर्तिवर्मा — देवी आनन्दी भी...चलो मालवी, चलो, वह देखो, वे कैसे लड़ रहे हैं। और उधर कवि वसुमित्र! अहा हा, कवि कैसी मस्ती से झूम रहा है। वह गा रहा है। सुनो मालवी, वह गा रहा है—

[कवि का स्वर सुनता है]

शिप्रा चम्बल का भैरव रव,
मांग रहा है दुश्मन के शव,
दूर सिन्धु में ले जायेंगी,
धरती पर न जलें ये दानव,
इन्हें जलाना धरती पर
यह धरती का अपमान है।

...चलो चलो मालवी।

[तेज़ी से जाते हैं। क्षण भर बाद तलवार चलाते हुए कवि का प्रवेश। रक्त से लथपत झूमता वह अकेला ही तलवार चला रहा है और गा रहा है। सहसा ठिठकता है।]

वसुमित्र — अरे यहाँ तो कोई नहीं। सब कट गये कम्बख्त। ऐसे कटते हैं जैसे गाजर मूली। पर यह शोर! (युद्धघोष उठता है) ओ हो, कुमार कीर्तिवर्मा! अरे वे घिर गये। असंख्य हूणों ने कुमार को घेर लिया और वे ऐसे ही लड़ रहे हैं जैसे सप्त महारथियों से अभिमन्यु लड़ा था। देखूँ, कुछ मदद कर सकूँ।

[तेज़ी से जाता है। पीछे से फिर सैनिक आते हैं और युद्ध करते जाते हैं। युद्धघोष तेज़ होता है और फिर धीमा पड़ने लगता है। तभी यशोधर्मन के साथ देवी आनन्दी का प्रवेश। देवी का मुख पीला पड़ रहा है। यशोधर्मन व्यग्र है।]

यशोधर्मन — (पसीना पोंछ कर) अब तक नहीं बताया देवी! यहाँ, यहाँ लेटो! हूण दूर चले गये हैं। मैं अभी किसी को देखता हूँ। मेरे प्राण बचाकर आज आपने...

आनन्दी — (धीमा पड़ता स्वर) कौन किसके प्राण बचाता है जनेन्द्र? जाओ, युद्ध घोष उठ रहा है। उधर ही जाओ। आर्य! मेरा प्राप्य मुझे मिल गया। विश्वास रखो जब तक हूणों की पराजय नहीं हो जाती, मैं ज़िन्दा रहूँगी।

यशोधर्मन — देवी...ओह। अच्छा देवी...चला!

आनन्दी — जनेन्द्र! आर्य!

यशोधर्मन — (रुक कर) कहो देवी!

आनन्दी — (एकदम) कुछ नहीं, कुछ नहीं कहना! जाओ, जाओ...

[कवि का प्रवेश, वह आवेश में है]

वसुमित्र जनेन्द्र ! शीघ्र ! शीघ्र ! कुमार कीर्तिवर्मा संकट में हैं। सारी हूण सेना उन्हें घेर कर मारने पर तुली है। सेनापति दूर चले गये हैं।

यशोधर्मन नहीं कवि ! उन्हें कोई नहीं मार सकता। चलो... चलो...

[शीघ्रता से जाते है। कवि जाते जाते मुड़ता है]

वसुमित्र कौन देवी ! इस अवस्था में ! क्या करूँ ! ओह ! मैं अभी आया....अभी आया....

[चला जाता है]

आनन्दी नहीं आने की ज़रूरत नहीं वसु ! किसी के आने की ज़रूरत नहीं। बस, शंखनाद सुनने की चाह है। तुम सब जाओ.... जो चाहती थी वह पा लिया। अब और कुछ पाने की आकांक्षा नहीं है। मैं लालच नहीं करूँगी। (उठने की चेष्टा करती है) स्वस्थ हो रही हूँ, देखूँ उठ सकूँ तो.... (फिर पीड़ा उठती है और दोनों हाथों से वक्ष दबा कर लेट जाती है) यह नहीं सोचा था। तलवार चलाते चलाते मरना चाहती थी। उस मृत्यु में सब पाप धो देना चाहती हूं। वह अनचाहा मातृत्व, वह प्रतिशोध ओह ओह ! नमः बुद्धाय, शान्ति शान्ति !

[सहसा मालवी का प्रवेश]

मालवी देवी....देवी...! (पास आकर उन पर झुक जाती है) देवी ! क्या कर डाला आपने यह ? अब तक छिपाये रही। जनेन्द्र ने अभी मुझे भेजा है। मैंने तभी देख

लिया था पर आपको ढूँढ़ न सकी।

आनन्दी — मालवी! सैनिक का धर्म करुणा नहीं है । बता तो कुमार कहाँ है ?

मालवी — कुमार तो देवी, दूसरे कार्तिकेय निकले । जब मैंने कहा—मिहिरकुल ने जो तलवार जनेन्द्र को मारने को उठाई थी उसे आपने अपने वक्ष पर सहा है, तब से वे उसके पीछे पड़े हैं । जनेन्द्र भी उन्हीं की ओर गये हैं । पर देवी जनेन्द्र का इस तरह युद्ध करना क्या अच्छा है ? (बराबर घाव को देखती है)

आनन्दी — कर्तव्य का बुरा नहीं होता मालवी । वह जनता का नेता है, कोई राजकुल का विशेष व्यक्ति नहीं । उसका स्थान सैनिकों में है । अच्छा मेरा सिर तो ऊँचा कर दे ।

मालवी — करती हूँ देवी ! घाव को बांध दूं । ओह देवी, इतना गहरा घाव !

आनन्दी — सच गहरा है ! तब उतना ही गहरा सुख भी होगा मालवी !

मालवी — हाँ देवी !

आनन्दी — तू जा मालवी ? कुमार के युद्ध-कौशल को देख । उनसे तेरा विवाह होगा ।

मालवी — देवी, युद्ध भूमि में कैसी बातें करती है !

आनन्दी — युद्ध... युद्ध तो समाप्त हो रहा है । मैं देख रही हूँ । हूणों की शक्ति अब टूट गई । मेरा प्रण पूरा होने वाला है । इसी दिन के लिये तो रुकी थी । नहीं तो हूणों द्वारा छुये गये शरीर को लेकर मैं क्या जीती रहती ! नहीं मालवी...मालवी...

मालवी देवी !

आनन्दी (एकदम) तूने कभी किसी माँ को देखा है ! वह माँ...(तेजी से) रहने दो, माँ को सभी देखते हैं (सहसा शोर उठता है । शंख बज उठता है । जय जयकार) यह कैसा शोर है ! (जल्दी जल्दी उठती है) क्या जय हुई, जय हुई ! मालवी मुझे उठा तो, उठा, मालवी ! एक बार हर्षनाद करते मालव वीरों को देखूँ तो, एक बार कुमार कीर्तिवर्मा, जनेन्द्र, कवि सबको देखूँ तो ! नहीं, नहीं, यह सब तृष्णा है । तथागत के मार्ग पर यह तृष्णा न चलेगी । (लेट जाती है) मेरे शस्त्र खोल दे मालवी ! प्रतिशोध पूरा हुआ ।

मालवी (करुणा और हर्ष से रुंधा स्वर) देवी अभी खोलती हूँ । (खोलती है)

आनन्दी और सैनिक वेश भी उतार दे ।

मालवी अच्छा देवी ! (उतारती है)

आनन्दी अब तू मेरे वक्ष को दबा कर बैठ जा । वे आ रहे हैं (मूर्च्छा सी) वे...वे...जो महान हैं, जो...मेरे... मेरे...नहीं; नहीं, वे मेरे कुछ नहीं...सबके हैं सबके...मेरे नहीं सबके हैं, मैं उनको अपना कह कर कैसे अपमानित कर सकती हूँ ! मैं जो पतिता...मैं जो हूणों द्वारा सताई गई ।

[जय जयकार करते हुए जनेन्द्र के पीछे कवि, और नरवर्धन आदि का प्रवेश । मालवी उत्सुकता से देखती है, सब लोग आनन्दी को घेर लेते हैं]

मालवी — जनेन्द्र आ गये देवी !

यशोधर्मन — (पास जाकर) देवी ! क्या हाल है ?

आनन्दी — हूण पराजित हुए, जनेन्द्र ?

यशोधर्मन — हाँ देवी, आपके प्रताप से मालवगण फिर विजयी हुए। मिहिरकुल अकेला भाग निकला है, कुमार उस के पीछे गए हैं। मुझे विश्वास है कि अब हूण कभी संगठित युद्ध न कर सकेंगे।

आनन्दी — तब ठीक है आर्य ! मेरा व्रत पूरा हुआ। मैं अब चली।

यशोधर्मन — (चौंक कर) कहाँ देवी ?

आनन्दी — (शान्त स्वर में) नमो बुद्धाय। बुद्धं शरणं गच्छामि। धर्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। जनेन्द्र.... आर्य........ विदा...आ... आ...अगले....... जन्म (तीव्रता से) नहीं...यह मो...ह...है (फिर संभल कर) आर्य !

यशोधर्मन — देवी !

आनन्दी — एक काम करना....मालवी का...विवाह कीर्ति से कर देना....।

यशोधर्मन — देवी...देवी यह तुम करना। तुम....।

आनन्दी — (बिना सुने) और तुम हूणों को आत्मसात् करने का प्रयत्न करना....राजपद....नहीं....नहीं....बस....अब विदा आर्य....जनेन्द्र, ····विदा····।

[सहसा अन्तिम शब्द कहते हुए प्राण निकल जाते हैं। सिर मालवी की गोद से लुढ़क जाता है।]

मालवी — (चीख कर) जनेन्द्र····देवी !

यशोधर्मन — (झुक कर) देवी....देवी गईं, मालवी ! विजय की देवी हमको विजय दे कर चली गईं। (मालवी

तुबक उठती है) **रोती हो मालवी ! युद्धभूमि में जिसे वीर गति मिलती है उसके लिये आँसुओं का अर्घ्य नहीं चढ़ाया जाता । उन्हें प्रणाम करो । उनकी सब कामनाएं पूर्ण हुईं, वे मुक्त हो गईं** । (यशोधर्मन आगे बढ कर देवि आनन्दी के चरणों में मस्तक झुका देते है । सब उनका अनुसरण करते हैं) **और कवि ! देवी के लिये चिता का प्रबन्ध करो । पीछे सेनापति रविवर्मा का शरीर भी आरहा है । वीरों को यहीं चर्मवती के तट पर सुला दो । पूरे आदर, पूरे सम्मान से, पूरे हर्ष से, नाचते गाते हुए । मालव भूमि की जय जय पुकारते हुए । गाओ तो कवि—"हम मालव हैं, हम विद्युत् की तरह प्रबल गतिमान हैं ।"**

[स्वर उठता उठता महानाद में पलट जाता है । सब लोग एक स्वर में गा.उठते हैं ।]

समवेत स्वर (करुण और वीररस से पूर्ण) **"हम मालव हैं हम विद्युत् की तरह प्रबल गतिमान हैं ।"**

[तभी सैनिक सेनापति रविवर्मा का शव ले आते है । मालवी उन्हें देख कर झुकती है ।]

मालवी **काका !** (करुण स्वर) **काका !!**

यशोधर्मन **मालवी शान्त ! सेनापति ने अपने पिछले पापों का प्रायश्चित्त किया है, इतना शानदार प्रायश्चित्त ! उसके लिये दुख कैसा !**

मालवी (दृढ़ हो कर) **नहीं जनेन्द्र ! मैं दुखी नहीं हूँ । मुझे अपने काका पर गर्व है ।**

[सैनिक सेनापति रविवर्मा के शव को देवी आनन्दी

के समीप ही रखते है। फिर सब सिर झुका कर दो क्षण के लिये मौन हो जाते है। परदा गिरने लगता है। गिरते-गिरते वे सब सिर ऊंचा करते हैं और कवि की वाणी गूँजती है—हम मालव हैं हम विद्युत् की तरह प्रबल गतिमान है। इसी गूंज पर परदा गिरता है।]

— — —

पांचवाँ दृश्य

(वन का एक निर्जन भाग। चारों ओर एक गहन मौन व्याप्त है। सन्ध्या का धुंधलापन सब कुछ को ग्रसता आ रहा है। इसी समय जब परदा उठता है तो ध्यान से देखने पर एक व्यक्ति वहां बैठा दिखाई देता है। क्लान्त, मलिन वेश, क्षत-विक्षत शरीर, किसान के वस्त्र पहने, दुनिया से भागता-सा वह व्यक्ति रंगमंच पर दर्शकों के बहुत पास है। पर सहसा दिखाई नहीं देता है। परदा उठने पर धीरे-धीरे दर्शकों की ओर मुख करता है। वह मिहिरकुल है। भारत पर शासन करने का स्वप्न देखने वाला हूण-सम्राट् मिहिरकुल ! धीरे-धीरे चिर रोगी की तरह वह उठता है और बुड़बुड़ाता है।)

मिहिरकुल — (स्वगत) **मैं हूँ मिहिरकुल** (हँसता है) **मिहिरकुल, जो सारे हिन्दुस्तान का शाहन्शाह, सारे हिन्दुस्तान को अपनी तलवार की नोक पर नचाने वाला, जिसका नाम सुन कर खौफ़ से इन्सान का दिल दहल उठता था, जिसके नाम से बड़ी-बड़ी ताकतें थर थर कांपने लगती थीं, जो जिधर भी नज़र डालता था, उधर ही सफाया सा होता चला जाता था, जो जिधर ही क़दम बढ़ाता था उधर ही बरबादी और मौत साये की तरह छा जाती थीं। जिसका नाम भय**

था; जिसका नाम...ओह...ओह...मैं वही मिहिरकुल हूँ, लाचार, पिटा हुआ, मौत से पनाह माँगता, जिन्दगी से मुंह छिपाता...क्या फेर है दुनिया का...कैसे बदल जाता है यह निज़ाम, जिसने रुलाया वह रोता है, जिसने बरबाद किया वह बरबाद हो गया। (हँसी) जो हकूमत करता था वह अब रोशनी में सिर उठाने से डरता है कि कहीं सिर न उड़ा दिया जाय। अन्धेरा ही अब उसकी पनाह है, अन्धेरा ही अब उसका दोस्त है, अन्धेरा ही अब उसकी जिन्दगी है...अन्धेरा... लेकिन (तेज़ आवाज़) लेकिन क्यों क्योंकि वह अब भी नाउम्मीद नहीं हुआ है क्योंकि अब भी उसके दिल में तमन्नाओं और हसरतों का समन्दर ठाटें मार रहा है। वह अब भी हकूमत के ख्वाब देखता है, वे ख्वाब जो हसीन हैं, जो रंगीन हैं, जो ज़िन्दगी की ताज़गी से भरपूर हैं, जिनमें शोहरत की बलन्दी है, जिनमें मरतबे की धाक है (फिर मौन, गहन मौन) लेकिन...लेकिन वे ख्वाब क्या कभी पूरे होंगे...क्या कभी पूरे होंगे...(झटके के साथ) क्यों न होंगे ! वे होंगे। वे पहले भी हुए हैं और अब भी होंगे। हाँ, अब भी होंगे, ज़रूर होंगे। जब तक मिहिरकुल ज़िन्दा है, उसके ख्वाब पूरे होते रहेंगे [सहसा किसी के आने की पदचाप सुन कर वह चौंकता है और काँप कर उठता है) कौन....कोई आया (चारों तरफ देखता है) न.... नहीं....तो न....न....(फिर पदचाप उठते हैं) कोई है....भागूं-भागूं—ओह, ओह, भागना ही पड़ेगा

(कहते कहते तेजी से भागता है। उसके जाते ही दूसरी ओर से एक युवती वहां आती है, उसके साथ एक हूण सैनिक भी है। युवती ने भारतीय नारी के से वस्त्र पहने हैं, पर इस समय वह बड़ी व्यग्र है, तेज़ी से चारों ओर देखती है।)

युवती — यहां....यहां तो नहीं हैं।

हूण सैनिक — यहीं थे, अभी यहीं पास थे, शाहज़ादी! मैंने उन्हें देखा था।

शाहज़ादी — थे, तो कहां गये....?

हूण सैनिक — आगे होंगे शाहजादी! मेरे पीछे चली आओ, मैं यहां की चप्पा-चप्पा ज़मीन से वाक़िफ हूँ और अब तो हम मालवे की सरहद पर आ पहुंचे हैं। बस....

शाहज़ादी — उससे क्या होता है! आज तो इस मुल्क में चारों तरफ शोले भड़क रहे हैं। कहीं ठौर नहीं है। हमने जो कांटों की फसल बोई थी वह अच्छी तरह उग आई है।

हूण सैनिक — शाहज़ादी, आपके पिता

शाहज़ादी — (देख कर) वह, वह तो नहीं हैं।

हूण सैनिक — (देख कर) वह हाँ, हाँ, वही वही हैं। आहिस्ता, बिल्कुल आहिस्ता, पर कदम लम्बे-लम्बे रखो।

(दोनों आहिस्ता-आहिस्ता, पर लम्बे-लम्बे क़दम रखते हुए जाते हैं। एक क्षण बाद दूसरी ओर से सहमा हुआ मिहिरकुल आता है। बीच में आकर ठिठकता है। फेंटे से एक कागज़ निकालता है, उसे देखता है।)

मिहिरकुल — हूँ, तो मैं यहां हूँ। सरहद से कुल बीस मील दूर हूँ। बीस मील, बस अब तीन घण्टे की बात है.... तीन घण्टे....तीन घण्टे भी कोई बड़ा वक्त है! वह आया और वह गया। वहां अभी मेरी फौज पड़ी हुई है। कोई डर नहीं, एक बार फौज में पहुँचा तो आगे बढ़ना कोई मुश्किल नहीं है, पर...पर किसी से स्थाण्वेश्वर और पंचनद का कुछ पता लग जाता कैसे लगे! कैसे....शायद फौजो को पता होगा। गुप्तचर तो आये ही होंगे, अच्छा चलूं। कोई आ न जाय। (इसी समय दबे पांव वह युवति और सैनिक आते हैं) अभी मैं डर गया था। शायद कोई जानवर था (हँसता है) अब तो जानवर भी डरा देते हैं।

(सहसा भूल कर जोर से हँस पड़ता है, फिर एक दम रुक कर आंखें मीच लेता है, फिर उन्हें खोलता है। सामने वह लड़की और सैनिक हैं। काँप उठता है। और गिरने को होता है फिर सहसा भागना चाहता है। तभी दौड़ कर लड़की उसे अपनी कोली में भर लेती है और पुकारती है स्नेह और प्रेमभरे स्वर में)

शाहज़ादी — पिता!

[वह और भी....वेग से काँप कर आँखें खोलता है, काँपता है, आँखें खोलता है।]

शाहज़ादी — पिता!

मिहिरगुल — (आँखें बन्द किये किये) बेटी....बेटी तू....आ गई.... तू मेरे साथ चलेगी....ओह मेरी बेटी...मेरी अच्छी

बेटी ! आखिर तुझे पिता पर तरस आ ही गया, आखिर तेरा हूण रक्त उबल ही उठा।

शाहज़ादी पिता ! उठो, उठो तो, वक्त बहुत थोड़ा है। चारो तरफ मालवे के सिपाही फैले हुए हैं।

[मिहिरकुल संभल कर उठता है]

मिहिरकुल कहाँ ! कहाँ हैं !

शाहज़ादी पिता ! आप डरें नहीं। अभी वे दूर हैं। आप मेरी बात सुनें। पंचनद प्रदेश से दूत आया है। वहाँ भी....।

मिहिरकुल वहाँ भी....वहाँ भी क्या हुआ, बेटी ? क्या वहाँ भी हम हार गये ?

हूण सैनिक आलीजहाँ ! वहाँ बग़ावत हो गई है। आप के छोटे भाई मारे गये.... ।

मिहिरकुल मारा गया ! (तेज़) मारा गया तो अच्छा हुआ, अच्छा हुआ बेटी ! वह गद्दार था, वह वह....।

शाहज़ादी पिता....पिता....उन बातों को मत सोचो। अब उधर मत जाओ। वक्त नहीं है। यही ख़बर देने आपको ढूंढ़ती आई हूँ।

मिहिरकुल मैं वहाँ न जाऊं...तो कहाँ जाऊं...।

शाहज़ादी कहीं भी पिता। पर आप स्थाणेश्वर से होकर शाकल की ओर न जावें।

मिहिरकुल (दृढ़ होकर) ठीक है। मैं उधर नहीं जाऊंगा। मैं रास्ते जानता हूँ। मैं जानता हूँ, पर तू कहां जायेगी....।

शाहज़ादी मैं....मेरी फ़िक्र न करो पिता। मैं अब यहीं रहूंगी।

मिहिरकुल (क्रुद्ध) तू यहीं रहेगी...तू...नहीं, तुझे चलना होगा। तुझे चलना होगा। (झपटता है)

शाहज़ादी (रुंधा स्वर) पिता ! देर हो रही है। जाइये, दक्खन का मार्ग छोड़ कर उत्तर की ओर से जाइये। पशुपति आपका भला करेंगे।

मिहिरकुल (बेबस तड़फड़ाता है) ओह ओह....पशुपति...पशु-पतिनाथ की बच्ची...

शाहज़ादी (व्यग्र) पिता जाइये, जाइये। (सैनिक से) सैनिक, जहाँपनाह को रास्ता दिखाओ। (कह कर तेज़ी से पीछे मुड़ जाती है। दोनों उधर ही देखते हैं।)

सैनिक आलीजहाँ...आलीजहाँ ! वह, वह टुकड़ी...वह दुश्मन के सिपाही...

मिहिरकुल दुश्मन के सिपाही...ओह चलो, चलो...लेकिन बेटी...बेटी...ओह चलो चलो भागो। मरने दो बेटी को। बाप की दुश्मन, लेकिन मरने भी दो....

[तेज़ी से दोनों जाते हैं। एक क्षण बाद उसी ओर से एक वृद्धा एक बच्चे को पीठ पर बाँधे आती है। वृद्धा बहुत थकी और जीर्ण है। हाथ की लकड़ी काँपने लगती है। पीठ का बच्चा रो-रो कर चुप हो जाता है। सहसा वह तेज़ी से रो पड़ता है। बुढ़िया उसे उतार कर चुप कराने का व्यर्थ प्रयत्न करती है। लगभग पाँच वर्ष का बच्चा है। रंग चिट्टा है। एक लंगोट बांधे है। बाल लम्बे। गले में माला। कटि में मेखला।]

वृद्धा — ओ ! ओ ! चुप हो जा, अब चुप भी हो जा, आ ! आ ! क्या हो गया । यहाँ कौन है ? ओह, तू तो जल रहा है, आग की तरह जल रहा है.... कम्बख्त....मर जाता तो छुट जाता । मैं भी छुट जाती पर....पर....ओ-ओ (छाती से चिपकाती है) बस चुप हो जा । मैं भी कैसी पगली हूँ । भला तेरा अपराध....तेरा क्या अपराध....तू तो दौड़ता चलता । मेरी उंगली पकड़ कर ले चलता, मुझे तो तू माँ कहता है (हँस कर) और माँ हूँ भी मैं ही । मैंने ही तुझे पाला है ।

[इसी समय शाहज़ादी फिर वहाँ आती है । वृद्धा को देख कर ठिठकती है ।]

शाहज़ादी — तुम....तुम कौन हो ? (वृद्धा काँपती है ।)

वृद्धा — मैं, मैं, एक दुखिया हूँ । मेरे कोई नहीं है, बेटे-बहू मारे गए । बस, बस, यह एक पोता है । इसे बुख़ार आ गया है ।

शाहज़ादी — (बच्चे को लेकर) ओह, इसे तो तेज़ बुखार है । माँजी, आप उठें । मेरे साथ चलें अभी । पास में एक गांव है ।

वृद्धा — तू कौन है बेटी ! तू तो हूण हूण...

शाहज़ादी — हाँ, मैं हूण हूँ माँजी, पर पर आप फ़िक्र न करें । जल्दी करें, बच्चे की हालत ख़राब है । और और माँजी, आपने यहां किसी को देखा तो नहीं था ?

वृद्धा — यहां ! न बेटी, यहां तो कोई नहीं था पर तू कौन है ? तू मुझे कहां ले जा रही है ? नहीं, नहीं । बच्चे को मुझे दे । दे...

शाहज़ादी — **माँजी, मेरी बात मान लो । मैं धोखा नहीं दूँगी। सभी हूण बुरे नहीं होते । मैं कैसे कहूं माँजी ! अच्छा, नहीं चलतीं तो यहीं ठहरो । मैं दवा लाती हूँ । जाना मत ।**

[तेज़ी से भागना चाहती है पर तभी वृद्धा उठती है ।]

वृद्धा — (स्वगत) **यह तो औरों की तरह नहीं है...। नहीं, यह कोई और है और वही हो तो कोई मेरा क्या कर लेगा । गाँव में तो हूण हो नहीं सकते । तो पुकारूँ ।** (पुकारती है) **ठहर बेटी, ठहर ! मैं साथ ही चलती हूँ ।**

[शाहज़ादी लौट कर बच्चे को छाती से चिपका लेती है । उसकी आँखों में स्नेह के आँसू और ओठों पर विजय की मुस्कान है । एक हाथ से बच्चे को दबाती है, दूसरे से वृद्धा को सहारा देती है और दोनों मंच से बाहर हो जाती है । उनके पीछे दो क्षण बाद कई मालव सैनिक आते हैं । वे किसी को खोज रहे हैं ।]

एक सैनिक — **मुझे पता लगा था । यहां दक्खन के मार्ग पर— कोई हूण देखा गया था। उसकी शक्ल मिहिरकुल से मिलती है । एक औरत ने बताया था ।**

दूसरा सैनिक — **तो फिर सेनापति को सूचना दो । कुमार कीर्तिवर्मा का दल पास ही तो है ।**

पहला सैनिक — **मैं वहीं जाता हूँ ।** (जाता है)

तीसरा सैनिक — **और मैंने तो स्वयं एक हूण नारी को आर्य युवती के वेश में देखा था । वह भाग रही थी । इधर ही तो आई होगी ।**

दूसरा सैनिक नहीं, इधर तो नहीं आई। उधर न चली गई हो?

तीसरा सैनिक चलो देखो। (गांव की ओर दिखा कर) वहां गांव में तो क्या गई होगी!

दूसरा सैनिक वहाँ जाकर क्या करेगी? साँप के मुँह में जान-बूझ कर कौन उँगली देता है!

[बोलते-बोलते दोनों जाते हैं, परदा गिर जाता है।]

छठा दृश्य

[पाँचवें दृश्य जैसा स्थान । उसी के पास कुछ दूर मालव सेना का पड़ाव है । यहाँ चहल-पहल है । कभी-कभी सैनिक आकर चले जाते हैं । परदा उठने के दो-तीन क्षण बाद कुमार कीर्तिवर्मा और भारती वहाँ आते हैं और एक ओर एक शिला पर बैठ जाते हैं । दोनों प्रसन्न हैं । दोनों सैनिक वेश में हैं । दोनों बातें करते आते हैं ।]

भारती — कितना सुन्दर है यह प्रदेश, कुमार ! क्या कहूँ, यहाँ की हवा में सुगन्ध आती है ।

कीर्तिवर्मा — (हँस कर) सच !

भारती — सच नहीं तो झूठ !

कीर्तिवर्मा — मैं तो समझता हूँ यह सब झूठ ही है ।

भारती — क्यों ?

कीर्तिवर्मा — क्योंकि हवा में कैसी भी गन्ध नहीं होती ।

भारती — (जोर से हँसती है) समझी ! मुझे हराना चाहते हैं कुमार ! पर जानते नहीं कि मैं कवि की पत्नी हूँ । हवा में गन्ध नहीं होती, पर जहाँ से हवा आती है वहाँ तो होती है । हवा मानो हमारा स्पर्श करके हमें सूचना देती है कि जिस प्रदेश में तुम हो वह सुगन्ध से महक रहा है ।

कीर्तिवर्मा — सच ! तुम इतना जनती हो, तब तो मुझे हार माननी पड़ेगी। अच्छा आचार्या जी ! तुम्हें यह प्रदेश इतना प्यारा क्यों लगता है ?

भारती — और जो यही प्रश्न मैं कुमार से पूछूँ तो...

कीर्तिवर्मा — तो क्या ! मैं कहूँगा वह मेरी मातृभूमि है।

भारती — (हँस कर) और मैं भी यही कहूँगी।

कीर्तिवर्मा — भारत तुम्हारी मातृभूमि है ?

भारती — जी हाँ ! सम्राट् तोरमाण से बहुत पहले मेरे दादा यहाँ बस गए थे। मेरे पिता भी यहीं पैदा हुए। उन्हीं के प्रयत्नों से सम्राट् तोरमाण ने शैव धर्म स्वीकार किया था। वे जीवित रहते तो देवपुत्र कनिष्क की तरह भारत के हो रहते, पर वह तो बौद्धों के बहकाने पर मिहिर ने विद्रोह कर दिया।

कीर्तिवर्मा — हाँ, उसने सोचा था कि वे इस प्रकार मिहिरकुल के द्वारा तोरमाण का नाश करवा कर हूणों का अन्त कर देंगे, पर शीघ्र ही उन्हें अपनी योजना की व्यर्थता का पता लग गया और वे पीछे हट गये।

भारती — पर उस मूर्खता का जो बदला उन्हें चुकाना पड़ा उसे क्या भारत कभी भूल सकेगा !

कीर्तिवर्मा — शायद भूल जाता, पर देवी आनन्दी का बलिदान उसे कभी न भूलने देगा।

भारती — सच कुमार देवी, आनन्दी अद्भुत नारी थी।

कीर्तिवर्मा — भारती ! वे अद्भुत ही नहीं महान थी। यद्यपि वे प्रतिहिंसा की उपज थी तो भी उनके अन्तर में स्नेह का सोता छलछलाता था।

भारती — हाँ कुमार ! मैंने उन्हें अनेक बार देखा था । उनकी आँखों में माँ का स्नेह था ।

कीर्तिवर्मा — हाँ भारती , मालवी कहती थी कि मृत्यु के समय कई बार माँ का शब्द उनकी जिह्वा पर आया । कई बार उन्होंने जनेन्द्र के प्रति प्रेम प्रगट करने की चेष्टा की, नहीं कह सकता वह प्रेम कैसा था । उसे प्रगट किये बिना ही उन्होंने अपने को होम दिया ।

भारती — उस महान नारी का अन्त उसी के अनुरूप हुआ, कुमार ! (सहसा कवि का प्रवेश) उसने अपने प्राणों से जो ज्योति जलाई थी वह जनेन्द्र की प्राण रक्षा करके ही बुझी ।

[कवि सहसा आगे बढ़ आता है ।]

वसुमित्र — जो ज्योति प्राणों से जलाई जाती है वह कभी नहीं बुझ सकती, भारती ! प्रलय भी उसी के आलोक से आलोकित होता है ।

[दोनों मुड़ते हैं]

भारती — कौन....आप !

कीर्तिवर्मा — आओ कवि ! जहाँ तुम हो वहाँ सदा आलोक ही रहता है ।

भारती — और आलोक जीवन की शर्त है, पर कवि ! यह हिंसक विजययात्रा कब तक चलती रहेगी ।

वसुमित्र — बस भारती ! इसका अन्त भी आ पहुँचा है । मिहिर-कुल इस बार नहीं लौट सकता । यह जागरण सर्वव्यापी है । पंचनद प्रदेश, गान्धार, स्थाणेश्वर सब जगह विद्रोह का स्वर गूँज उठा है ।

भारती — ठीक है कवि, पर इस टूटती हुई राजनीतिक शक्ति के साथ-साथ सांस्कृतिक समन्वय का नारा भी उठाना चाहिये।

कीर्तिवर्मा — कवि ! तुम्हारी भारती समझती है कि तलवार की विजय स्थायी नहीं होती।

वसुमित्र — हाँ कुमार, नहीं होती। इसीलिये मैं अब एक ऐसा नाटक लिख रहा हूँ जिसमें सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान का चित्रण होगा। साथ ही मेरी एक योजना है।

कीर्तिवर्मा — कैसी योजना कवि !

वसुमित्र — कुमार, मैं एक नाट्य-संघ स्थापित करना चाहता हूँ। वह वर्ष भर घूम-घूम कर ऐसे नाटक खेला करेगा। कुमार, नाट्य कला सबसे बड़ी सामाजिक कला है।

कीर्तिवर्मा — और सबसे अधिक सशक्त भी। देख चुका हूँ कवि !

भारती — वही मैं कहती थी कवि ! तलवार से जो शेष रह गया है वह अब कला करेगी। दिग्विजयी परम-भागवत आर्य समुद्रगुप्त की विजय का रहस्य इतना शस्त्रों में नहीं था जितना उनके वीणावादन में।

कीर्तिवर्मा — आर्य समुद्रगुप्त की अच्छी याद दिलाई। वे तो विलक्षण व्यक्ति थे। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतुलन रखने के पक्ष में थे। उनके राज्यकाल में धर्म अर्थ काम मोक्ष सबका महत्व बराबर था। उन्होंने कला को विलासिता नहीं बनने दिया।

वसुमित्र — यही आर्य चन्द्रगुप्त ने किया पर आर्य कुमारगुप्त उस परम्परा को स्थिर न रख सके। उनके काल में कला

इतनी बढ़ी कि विलासिता बन गई और उसके दुष्परिणाम को तपस्वी स्कन्दगुप्त अपने समस्त प्रयत्नों के बावजूद भी नहीं रोक सके।

कीर्तिवर्मा रोक पाते तो जनेन्द्र का जन्म ही कैसे होता !

भारती ठीक कहा कुमार ! पर अब जनेन्द्र को उस इतिहास से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कीर्तिवर्मा (हँस कर) तुम अगर शिक्षा दोगी तो अवश्य ग्रहण करेंगे।

भारती मेरा वश चले तो मैं उनका विवाह किसी हूण राजकन्या से करके चन्द्रगुप्त मौर्य की तरह सदा के लिये दो जातियों को एक करदूँ।

कीर्तिवर्मा सुना कवि तुमने ! भारती का साहस कितना बड़ा है ?

वसुमित्र नारी से बढ़ कर कोई साहसी हुआ है क्या। वैसे हमें इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति नहीं है।

कीर्तिवर्मा आपत्ति तो किसे हो सकती है, पर...लेकिन छोड़ो भी इस चर्चा को।

भारती कुमार को शायद यह चर्चा अच्छी नहीं लगी।

कीर्तिवर्मा (एकदम) नहीं, नहीं, अच्छे-बुरे का प्रश्न नहीं है। मुझे एक बात याद आगई थी। तुम्हें भी सुनाऊँगा। शायद मेरा भ्रम हो। हाँ, तो कवि ! जनेन्द्र कहाँ हैं ?

वसुमित्र उज्जयनी से चल कर अब दशपुर आने वाले हैं। वहीं सब लोगों को पहुँचने का आदेश हुआ है। आचार्य वराहमिहिर के पास जो दूत गये थे वे भी

अब लौट आये हैं। उन्होंने सम्भवतः बताया है कि हूणों की शक्ति अब टूट गई है। उन्हें अब भारत में भारतीय बना कर बसा लेना चाहिये।

भारती — आचार्य ने मेरे मन की बात कही।

[तभी कई सैनिकों के साथ एक वृद्धा, एक हूण युवती, तथा उसकी गोद में चिपटे बालक का प्रवेश। ये नारियां प्रथम अंक की वृद्धा और मिहिरकुल की बेटी है। वे सब शान्त हैं। वेश पूर्ववत्‌ है। बालक अब शान्त है यद्यपि बेहद दुर्बलता का अनुभव कर रहा है तो भी नीचे उतरने को मचलता है, पर शाहज़ादी उसे थपथपा कर, पुचकार कर कंधे से चिपकाये रखती है। भारती उन्हें अचरज से देखती है, विशेष कर युवती को। सैनिक प्रणाम करते हैं।]

मालव सैनिक — कुमार की जय हो।

कीर्तिवर्मा — क्या बात है ?

सैनिक — कुमार ! इन दो नारियों को हमने इस गांव से पकड़ा है। ये अपना पता नहीं बतातीं। इनके पास एक बालक है और यह युवती हूण है।

वसुमित्र — सो तो दिखाई दे रहा है और यह भी दिखाई दे रहा है कि यह युवती साधारण नहीं है।

भारती — किसी सरदार की कन्या है। क्यों बहन ! तुम कौन हो ?

शाहज़ादी — एक नारी !

भारती — सो तो दिखाई देता है।

शाहज़ादी — तो जो दिखाई देता है उससे अधिक जानने की तुम्हारी चाह क्यों है ?

वृद्धा हम जो भी हैं यह आपके राजा के सामने ही बतायेंगे। मैं मगध से उन्हीं के पास आ रही हूँ।

कीर्तिवर्मा तुम मगध से आ रही हो?

वृद्धा हाँ, बेटा!

कीर्तिवर्मा जनेन्द्र से मिलने?

वृद्धा हाँ, बेटा!

कीर्तिवर्मा क्यों! उनसे क्या काम है?

वृद्धा जो काम है वह तो उन्हें ही बताया जा सकता है।

कीर्तिवर्मा लेकिन तुम्हारे साथ यह हूण युवती कौन है?

वृद्धा मैं नहीं जानती यह कौन हैं बेटा! पर है देवी। यह न होती तो यह बालक मर जाता। परसों यह मुझे अचानक ही यहां मिल गई थी। इसने बालक को देखा तो गांव में ले गई। वहाँ उसने इसकी वह देखभाल की कि क्या कोई माँ करेगी। देखो तीन ही दिन में बुखार उतर गया। दुष्ट मेरे पास तो आता नहीं।

[सब हँस पड़ते हैं। कुमार सहसा दृढ़ होते हैं।]

कीर्तिवर्मा पर यह बालक कौन है?

वृद्धा (कांप कर) यह...

कीर्तिवर्मा हाँ, यह तुम्हारा कौन है?

वृद्धा मेरा कौन है, कोई भी नहीं। मैंने इसे पाला है।

वसुमित्र कुमार! बालक में हूणरक्त का प्रभाव स्पष्ट है।

कीर्तिवर्मा देख रहा हूँ। उसका सौन्दर्य इस बात की साक्षी है। हूण रंग में भारतीय नक्श कैसे सुन्दर लगते हैं!

वृद्धा — तुम...तुम इतना जानते हो ! तुम कौन हो ?

वसुमित्र — कान्यकुब्ज के कुमार कीर्तिवर्मा का नाम तुमने नहीं सुना ?

वृद्धा — सुना बेटा, सुना ! (आशीर्वाद के लिये हाथ उठाती है) नमो बुद्धाय । कीर्तिमान हो ।

[कुमार अनायास सिर झुका देते हैं । वृद्धा हाथ फेरती है । शाहजादी के नयन भर आते है । वह कुमार को स्नेहपूरित नेत्रों से देखती है ।]

कीर्तिवर्मा — आप भिक्षुणी हैं, माँ !

वृद्धा — तक्षशिला में जब थी तब भिक्षुणी थी, बेटा ! अब तो वहीं मिट गया । अब मैं कुछ नहीं हूँ । फिर इस विजय ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा । इसके लिये सब कुछ करना पड़ा ।

भारती — तुम्हारे किसी प्रिय का बालक है ?

वृद्धा — प्रिय...हाँ वह प्रिय ही है । प्रिय से भी बढ़ कर हैं ।

भारती — कौन था वह...

वृद्धा — (चौक कर) कौन था...(संभल कर) उसका नाम जनेन्द्र को ही बताने का मुझे आदेश है । मुझे विवश मत करो ।

कीर्तिवर्मा — अच्छा माँ ! तुम्हें अब कोई कुछ नहीं कहेगा । सैनिको ! माँ को मालवी के पास ले जाओ । ये हमारे साथ चलेंगी ।

सैनिक — जो आज्ञा ! आओ माँ !

वृद्धा — तुम जुग जुग जियो बेटा ! आओ बेटा !

कीर्तिवर्मा नहीं माँ, यह आपके साथ नहीं जायेगी ।

वृद्धा क्यों ?

कीर्तिवर्मा यह शत्रु पक्ष की नारी है, माँ ! यह बन्दीगृह में रहेगी ।

वृद्धा तो फिर मैं भी वहीं रहूँगी ।...

शाहज़ादी नहीं माँ । नहीं, आप जाएँ । मैं बन्दीगृह में रहूँगी । वहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं होगा ।

वृद्धा नहीं, नहीं ! मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी । तुमने मेरे विजय के प्राण बचाये हैं । तुम नहीं जानती तुमने मेरे वचन की रक्षा की है । वह न बचता तो...तो...(रो पड़ती है)

भारती एक बात कहूँ कुमार....!

कीर्तिवर्मा नहीं ! (मुड़ कर) कवि ! माँ को भी इस युवती के साथ बन्दीगृह में रखो । इनकी रक्षा और सेवा का पूरा भार तुम पर होगा ।

वसुमित्र बहुत अच्छा !

कीर्तिवर्मा इन्हें किसी तरह का कष्ट न हो ।

वसुमित्र नहीं होगा ।

कीर्तिवर्मा इसके साथ वही बर्ताव होगा जो राजकुल के व्यक्ति के साथ होता है ।

वसुमित्र समझा कुमार, वही होगा ।

कीर्तिवर्मा तो मैं चलता हूँ । आप लोग जावें ।

[कुमार तेज़ी से जाता है, सैनिक सिर झुकाते हैं । शाहज़ादी जो अब तक एकटक कुमार को देख रही थी सिर झुका कर प्रणाम करती है ।]

शाहज़ादी — माँ, तुमने व्यर्थ कष्ट किया।

वृद्धा — कष्ट शायद उनके साथ रहने में अधिक था, बेटो! यह बन्दीगृह तो राजमहल बनेगा। देखती रहना।

वसुमित्र — सैनिको! सबको आदर से ले चलो। (सब जाते हैं)

भारती — कुमार का रूप आज देखा।

वसुमित्र — जनेन्द्र इनका इतना विश्वास व्यर्थ नहीं करते, देवी! आओ हम भी चलें।

भारती — चलो। इस युवती पर सन्देह होता है। मिलूँगी।

[जाते हैं। परदा गिरता है।]

सातवाँ दृश्य

[दशपुर के राजमहल का एक प्रकोष्ठ । मंच पर उसका एक भाग दिखाई देता है । एक ओर सुन्दर कालीनों पर तीन-चार आसन्दियाँ बिछी हैं । उन पर रेशमी गद्दियाँ और वैसे ही तोषक है । दूसरी ओर काष्ट की शैया बिछी है, उस पर भी वैसे ही गद्दी और तोषक है । उसके पास नीचे एक मखमल-मण्डित चौकी है । दीवार पर सामने एक तैल चित्र टंगा है जिसमें जनता हर्ष मनाती दिखाई गई है । एक कोने में एक प्रतिमा है । परदा उठने पर वहाँ शैया पर जनेन्द्र बैठे दिखाई देते है । उन्होंने उत्तरीय डाला और धोती पहनी है जो नीचे तक आ गई है । उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं है पर आँखों में एक विचित्र प्रकाश है । मुख पर गौरव की सौम्यता है । वे इस समय चौकी पर पैर रखे, दोनों हाथ शैया पर टेके, नेत्रों को ऊपर शून्य में उठाये कुछ सोच रहे है । दो क्षण ऐसे ही रहते है । फिर उठते है और हाथ पीठ के पीछे ले जाकर कुछ टहलते है और बोलने लगते है ।]

यशोधर्मन **(स्वगत) आनन्दी का चरित्र मेरी समझ में आज तक नहीं आया । ऐसा लगता था कि जब जब भी हम मिले वह कुछ कहना चाहती रही, पर न जाने**

क्यों उसका मुँह बन्द रहा ! न जाने क्यों बार-बार खुल कर उसके ओठ बन्द हो गये ! उसके नेत्रों में अनेक बार मैंने क्रोध की उस ज्वाला के पीछे स्नेह और प्रेम को छलकते देखा, पर कोई भी भाग्यशाली उसको पा न सका। उसकी वह तरल मानवता उस के नेत्रों में ही सूख गई । जग को केवल उसका कठोर पौरुष मिला और मिला अपूर्व बलिदान... वही बलिदान क्या उसके अतृप्त स्नेह और प्रेम की चरम परिणति नहीं थी !पर...वे...वे...जैसे किसी रहस्य को छिपाये थीं वह रहस्य जो उन्हें सदा कचोटता रहता था और जिसे वे सदा छिपाती रहीं और छिपाये हुए ही चलती गई....मेरा दिल जैसे कसक उठता है । जैसे उन्हें याद करके बार-बार उन्हें देखना चाहता है ..वे मुझसे प्रेम करने लगी थीं पर कहना चाहती नहीं थी। शायद देश उनके लिये सब कुछ था, शायद हूणों के प्रति उनकी घृणा इतनी प्रबल थी...ठीक भी है । जब देश हूणों के अत्याचारों के नीचे पिस रहा हो तो कोई प्रेम की बात सोच ही कैसे सकता है ! फिर देवी आनन्दी जैसी उच्च नारी....

[कुमार का प्रवेश]

कीर्तिवर्मा जनेन्द्र की जय हो !

यशोधर्मन (कांप कर) कौन...ओह तुम कुमार.... (जनेन्द्र आगे बढ़ कर उन्हें छाती से लगाते हैं । कई क्षण लगाये रहते हैं।) तुम भी जय जय पुकारते रहोगे। मुझसे

दूर मत भागो कीर्ति। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिये।

कीर्तिवर्मा जनेन्द्र के स्नेह का प्रतिदान मैं न दे सकूँगा। मैं उनकी आशा पूरी न कर सका। मिहिरकुल निकल गया।

यशोधर्मन सुन चुका हूँ कुमार! पर उससे क्या होता है। अभी हम प्रयत्न नहीं छोड़ेंगे। तुम्हें शास्त होकर तक्ष-शिला जाना पड़ेगा। अभी एक युद्ध और होगा। मैं भी चलूँगा। देवी आनन्दी के जन्मस्थान की यात्रा करना चाहता हूँ।

कीर्तिवर्मा सच...

यशोधर्मन हाँ कुमार! नरवर्धन पूर्व की ओर बराबर बढ़ रहे हैं। दूत अभी आया है इधर सेनापति ने उज्जयिनी को सुरक्षित कर दिया है। वह अब सौराष्ट्र की सीमा पर है। महाराज द्रोणसिंह ने सहयोग का पूरा आश्वासन दिया है। पर कुमार!

कीर्तिवर्मा आज्ञा जनेन्द्र!

यशोधर्मन यह सब कैसे हुआ?

कीर्तिवर्मा क्या जनेन्द्र!

यशोधर्मन यही मिहिरकुल का निकल भागना। एक विदेशी का इतनी तेज़ी से निकल जाना इस बात की सूचना देता है कि कहीं कोई षड्यंत्र है।

कीर्तिवर्मा षड्यंत्र...!

यशोधर्मन हाँ कुमार! उसे बराबर सूचना मिली है। बराबर उसे मार्ग सुझाया गया है। गुप्तचरों का कहना है कि मिहिरकुल की बेटी अभी मालवा में ही है।

मालवी ने उसी के बारे में तो कहा था कि वह सदा पिता का विरोध करती रहती थी...।

कीर्तिवर्मा क्या...आपको पता है ! आप सब कुछ जानते हैं ?

यशोधर्मन (हँस कर) जानना पड़ता है कुमार ! तुम किसी को बन्दी कर लाये हो न ?

कीर्तिवर्मा (कांप कर) तो...तो....क्या वह राजकुमारी है ?

यशोधर्मन हो सकती है कुमार ! मैं उससे अभी मिलना चाहूँगा।

कीर्तिवर्मा और तक्षशिला की भिक्षुणी से नहीं।

यशोधर्मन तक्षशिला की भिक्षुणी ! उसे क्यों पकड़ लाये ?

कीर्तिवर्मा उसे मैंने नहीं पकड़ा, जनेन्द्र ! वह उस युवती के साथ थी। उसके साथ एक बालक है। मार्ग में वह बीमार हो गया तो हूण राजकुमारी ने उसकी परिचर्या की। इसलिये जब मैंने राजकुमारी को बन्दी किया तो वृद्धा उसे न छोड़ सकी। वह आपसे मिलने आ रही है। वह आपसे उस बालक के बारे में बात करना चाहती है।

यशोधर्मन (चकित) बड़ी अद्भुत बात है ! तक्षशिला की भिक्षुणी मुझ से उस बालक के बारे में बात करना चाहती है ! वह बालक (कुमार बड़े ध्यान से जनेन्द्र को देखता है) और वह राजकमारी—यह सम्बन्ध आकस्मिक है या यह भी षड़यंत्र है (प्रगट) कुमार ! मैं पहले भिक्षुणी से मिलना चाहूँगा।

कीर्तिवर्मा जो आज्ञा, जनेन्द्र ! (पुकार कर) प्रतिहारी !

प्रतिहारी (प्रवेश करके) आज्ञा कुमार !

कीर्तिवर्मा बाहर प्रकोष्ठ में जो भिक्षुणी हैं उन्हें लिवा लाओ।

प्रतिहारी जो आज्ञा ! (जाता है)

यशोधर्मन कुमार ! वह मुझसे बालक के बारे में क्या बात करना चाहती है ?

कीर्तिवर्मा यही तो उसने नहीं बताया।

यशोधर्मन बालक कैसा है ?

कीर्तिवर्मा उसके माँ बाप में से एक अवश्य हूण रहा है जनेन्द्र !

यशोधर्मन (काँप कर) क्या...

[तभी भिक्षुणी का प्रवेश। बालक की उँगली पकड़े है। बालक ससम्भ्रम चारों ओर देखता है। भिक्षुणी आते ही मुस्करा कर आशीर्वाद देने को हाथ उठाती है। जनेन्द्र कभी भिक्षुणी को देखते हैं कभी बालक को, फिर सहसा बोल उठते हैं।]

यशोधर्मन आप !

भिक्षुणी हाँ जनेन्द्र ! पहचान गये ?

यशोधर्मन माता ! (गला भर आता है)

भिक्षुणी सुन चुकी हूँ। मार्ग में सब पता लग गया। आनन्दी से न मिल सकी (गला रुँध जाता है)।

यशोधर्मन (संभल कर) माता ! देवी मृत्यु के समय पूर्ण सन्तुष्ट थी।

भिक्षुणी वह भी सुन चुकी हूँ, पर क्या उसने आपसे कुछ कहा नहीं ?

यशोधर्मन किस बारे में ?

भिक्षुणी इस बालक के बारे में।

यशोधर्मन — इस बालक के बारे में। (बालक को देख कर) यह कौन है ? कौन है यह माता ? इसने...(एकदम) इसमें तो देवी आनन्दी की मनुहार है।

कीर्तिवर्मा — मैं अब तक भूला रहा। जनेन्द्र ! यह तो देवी का रूप है, केवल रंग का भ्रम है।

भिक्षुणी — यह देवी का पुत्र है, जनेन्द्र ! देवी का अनचाहा पुत्र, देवी का पाप...

यशोधर्मन — माता...

भिक्षुणी — विश्वास नहीं आता है।

यशोधर्मन — माता देवी पाप नहीं कर सकती।

भिक्षुणी — देवी ने कहा था पाप तो यह है। मेरा है या मेरे समाज का है, पर पाप है लेकिन...

यशोधर्मन — लेकिन...

भिक्षुणी — लेकिन यह बालक पापी नहीं है। यह माँ का बेटा है। यह आनन्दी का अंश।

यशोधर्मन — देवी आनन्दी ने कभी भी तो नहीं कहा। संकेत तक नहीं किया। हाँ, कई बार कुछ कहना चाहा पर कह न सकी। निस्सन्देह वह यही कहना चाहती थी पर उस महान नारी ने देश को सर्वोपरि समझा और अपनी व्यथा को अपने हृदय में लिये ही वे समाधिस्थ होगईं।

कीर्तिवर्मा — माता ! देवी ने कोई पत्र तो छोड़ा होगा ?

भिक्षुणी — यह है कुमार ! यह तावीज़ में बंधा है। (बालक की भुजा पर बंधे तावीज़ को खोल कर एक पत्र देती है) यह लो कुमार !

कीर्तिवर्मा (लेकर) जनेन्द्र ! पत्र तो देवी का ही है।

यशोधर्मन देवी का पत्र है ! पढ़ो तो कुमार...

कुमार (पढ़ता है) मालव सैनिक !

मेरा तुम्हारा परिचय बहुत थोड़ा है पर मेरा मन कहता है कि भविष्य तुम्हारा है। मेरी करुण कहानी तुम सुन चुके हो। उसी पाप का प्रसाद यह बालक है। एक बार चाहा इसे नष्ट कर दूँ। अपने को तो नष्ट करना चाहती नहीं थी। छाती में प्रतिशोध की आग धधक रही थी। इसे नष्ट करना चाहा पर जैसे ही सोचा दिल में एक विचार कौंध गया—'इस बेचारे का क्या अपराध है ! जो है मेरा है, मेरे देश का है। मैं ही उसके दण्ड को सहूँगी, यह क्यों सहे ?'

मेरा निश्चय है, मैं हूणों से प्रतिशोध लूँगी और साथ ही चाहूँगी यह बालक भी उनको नष्ट करने वाला हो। चाहे शस्त्र से चाहे कला से। इस लिये इसे तुम्हें सौंपना चाहती हूँ। कैसे सौंपूँगी नहीं जानती। हो सकता है तक्षशिला की भिक्षुणी इसे पाल ले क्योंकि मैं तो आग में कूद रही हूँ। तब वे ही इसे कभी आपके पास लावें। यदि वे तुम तक पहुँच सकें तो इससे घृणा मत करना ....।

यशोधर्मन (सहसा चीख कर) बस....बस करो कुमार ! बस करो। आगे मत पढ़ो ! (रुँधा स्वर) आओ मेरे बच्चे ! (बालक को उठा लेता है) मेरे गले से लग जाओ। तुम इतने प्यारे हो ! तुमसे कोई घृणा कैसे

कर सकता है ! कैसे...तुम्हारी माँ...ओह ! तुम माँ को क्या जानो...

[छाती से चिपका कर रो पड़ता है । कुमार और भिक्षुणी के नयन भी सजल हो जाते हैं । भिक्षुणी हर्ष से मुस्कराती है ।]

भिक्षुणी — मैं धन्य हुई बेटा ! मैं मुक्त हुई । तेरी जय हो... जय हो !

यशोधर्मन — (शान्त होकर) तुम्हारा क्या नाम है, बेटा ?

विजय — विजय !

यशोधर्मन — बड़ा प्यारा, बड़ा सार्थक नाम है । तुम हमारे पास रहोगे ?

विजय — हम माँ के पास रहेंगे । हम दीदी के पास रहेंगे ।

यशोधर्मन — और हमारे पास नहीं रहोगे ! यह दीदी कौन है ?

भिक्षुणी — वह हूण राजकुमारी हैं जनेन्द्र । इन थोड़े से दिनों में इतना परच गया है इससे जैसे जन्म जन्म का साथ हो । उसने इसके प्राण भी तो बचाए हैं । वह न होती तो...

यशोधर्मन — (सहसा) कुमार ! राजकुमारी को बुलाओ, मैं तो भूल ही गया था ।

कीर्तिवर्मा — (पुकार कर) प्रतिहारी ! तुम राजकुमारी को उपस्थित करो ।

प्रतिहारी — जो आज्ञा !

यशोधर्मन — तो माता ! अचानक विजय के बीमार हो जाने पर आपने उस हूण कुमारी को देखा । उससे पहले नहीं ?

भिक्षुणी — नहीं।

यशोधर्मन — उसने कुछ कहा ? अपना परिचय दिया ?

भिक्षुणी — मार्ग में सब कुछ बता दिया, जनेन्द्र। कुछ नहीं छिपाया।

यशोधर्मन — तो...तो...

[हूण कुमारी का प्रवेश]

शाहज़ादी — मैं हाज़िर हूँ जनेन्द्र।

[यशोधर्मन सहसा दृष्टि उठाकर निर्भयता से मुस्कराती शाहज़ादी को देखता है और काँपता है और फिर मुस्कराता है]

यशोधर्मन — हूँ, तो तुम हो मिहिरकुल की बेटी !

शाहज़ादी — आप जानते हैं ?

यशोधर्मन — तुम्हीं बताओ।

शाहज़ादी — आप ठीक कह रहे हैं जनेन्द्र। आपको पता है।

यशोधर्मन — हाँ, राजकुमारी ! मुझे पता है। मुझे कुछ और भी पता है।

शाहज़ादी — तो वह भी बता दीजिये।

यशोधर्मन — वह तुम जानती हो।

शाहज़ादी — क्या ?

यशोधर्मन — कि तुमने अपने पिता को मालवे की सीमा से निकल जाने में मदद की है।

शाहज़ादी — की है जनेन्द्र।

यशोधर्मन — (क्रुद्ध) जानती हो इसका क्या दण्ड है ?

शाहज़ादी — जानती हूँ जनेन्द्र ! इसका दण्ड मृत्यु है।

यशोधर्मन — इतना जानकर भी तुमने ऐसा किया ?

शाहज़ादी — मैं और कुछ कर ही नहीं सकती थी ।

यशोधर्मन — क्या मतलब ?

शाहज़ादी — जो कुछ कहा वही मेरा मतलब है । मैंने जो कुछ किया उसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कर सकती थी, जनेन्द्र ।

यशोधर्मन — मैं जानता हूँ तुमने अपने पिता का विरोध किया था। इस पर भी तुमने उसे निकल जाने दिया ?

शाहज़ादी — हाँ जनेन्द्र ! इस पर भी मैंने उन्हें निकल जाने दिया। आख़िर वे मेरे पिता ही तो हैं । मैं उन्हें मरते न देख सकती थी ।

यशोधर्मन — तुम्हें विश्वास था कि मैं उसे पकड़ पाता तो मार डालता !

शाहज़ादी — हाँ, मैं समझती थी कि इस बार वे दया न पा सकेंगे और दया मिलती भी तो वह मौत से बुरी होती ।

यशोधर्मन — क्यों....

शाहज़ादी — क्योंकि वे उसे समझ न पाते। वे छूट कर फिर विद्रोह करते । यह होता विश्वासघात । यह दोनों के लिये बुरा होता...

यशोधर्मन — (चकित) राजकुमारी !

शाहज़ादी — ठीक नहीं कह रही क्या, जनेन्द्र ? अपने पिता को जानती हूँ । स्वभाव जो है उसे वे न छोड़ पाते । सांप क्या कभी सीधा चल सकता है ।

यशोधर्मन — (चकित) राजकुमारी...तुम चाहती थीं तुम्हारे पिता विद्रोह न करें !

शाहज़ादी — चाहती थी जनेन्द्र ! चाहती थी वे विद्रोह न करें । वे सम्राट् तोरमाण की नीति को आगे बढ़ावें । वे

आर्यों के मित्र बनें। वे भारत को मातृभूमि मानें, पर मेरा चाहा पूरा न हुआ।

यशोधर्मन — पर तुम अपने पिता के साथ क्यों न लौट गईं ?

शाहज़ादी — क्योंकि मैं अपनी मातृभूमि को प्यार करती हूँ, मैं भारत की बेटी हूँ, मैं भारत में ही रहूँगी।

यशोधर्मन — और अवसर मिला तो अपने पिता का प्रतिशोध लूँगी।

शाहज़ादी — प्रतिशोध और प्रायश्चित कुछ भी कहो जनेन्द्र ! मैंने निश्चय किया है कि मैं अपने पिता के स्वप्नों को नष्ट कर दूँगी। मैं भारत पर राज्य करने के हूणों के स्वप्नों को नष्ट कर दूँगी। मैं उन्हें भारत का बनाने का प्रयत्न करूंगी। मैं आर्यों और हूणों को एक हो जाने का मार्ग दिखलाऊँगी।

यशोधर्मन — (प्रभावित) राजकुमारी ! क्या...क्या तुम ठीक कह रही हो ?

शाहज़ादी — इसका प्रमाण तो आगे आने वाला मेरा भविष्य ही देगा।

यशोधर्मन — (स्वगत) कुछ समझ में नहीं आता···कुछ समझ में नहीं आता (प्रगट) तुम्हें छोड़ दिया जाय तो तुम कहाँ जाओगी ?

शाहज़ादी — जनेन्द्र के पास।

यशोधर्मन — (काँप कर) मेरे पास !

शाहज़ादी — हाँ।

यशोधर्मन — क्या करोगी ?

शाहज़ादी — जो कहेंगे वही करूँगी।

कीर्तिवर्मा — जनेन्द्र ! क्षमा करें। मुझे इसमें षड़यंत्र की गंध आती है।

शाहज़ादी — कुमार ! दुर्भाग्य से शत्रु की बेटी हूँ। मेरा विश्वास न आना स्वाभाविक है। पर क्या तुम सोचते हो एक नारी तुम सबको पराजित कर देगी ?

कीर्तिवर्मा — पराजित तो तुम्हारे पिता भी नहीं कर सके।

शाहज़ादी — हारे हुओं का अपमान न करो कुमार। यह आर्य-सभ्यता नहीं है।

कीर्तिवर्मा — हूण कन्या मुझे आर्य-सभ्यता का परिचय देती है !

शाहज़ादी — क्षमा करें कुमार ! हूणों की बर्बरता ने ही आर्य-सभ्यता का परिचय दिया है। एक क्षुद्र नारी के भय से उस सभ्यता का अपमान न करो।

यशोधर्मन — शान्त कुमार ! सुनो राजकुमारी ! तुम वही करोगी जो मैं कहूँगा ?

शाहज़ादी — हाँ जनेन्द्र ! उसे मैं सौभाग्य समझूंगी।

यशोधर्मन — तो देखो इस बालक को मैंने अपना पुत्र बनाया है।

शाहज़ादी — यह आर्यों के अनुरूप ही आपने किया।

यशोधर्मन — लेकिन पुत्र बना कर भी हम इसे पाल नहीं सकेंगे। बोलो तुम इसे पालोगी ? इसकी माँ बनोगी ?

(जैसे भूकम्प आता है)

शाहज़ादी — (काँप कर) जनेन्द्र ! (दौड़ कर पैर पकड़ लेती है) आर्य···आर्य ! क्या आपने सच कहा ?

कीर्तिवर्मा — जनेन्द्र ! आप क्या कह रहे हैं ? नहीं, नहीं, आपका यह मतलब नहीं है।

भिक्षुणी — **ओह ! आनन्दी का स्वप्न पूरा हो रहा है। पूरा हो रहा है। हूण नष्ट हो रहे हैं। वे नष्ट हो रहे हैं।**

यशोधर्मन — **मैंने जो कुछ कहा है, मैं उसका पालन करूँगा। लो राजकुमारी विजय को संभालो।**

शाहज़ादी — **लाओ जनेन्द्र !**

(हूण राजकुमारी बालक को गोद में उठाकर यशोधर्मन की ओर देखती है। मुस्कराती है। फिर कुमार के पास जा खड़ी होती है। कुमार अब भी मूर्तिवत् खड़े है)

यशोधर्मन — **और कुमार ! वसु और भारती को तो बुलाओ। राजकुमारी उन्हीं के साथ रहेगी।**

कीर्तिवर्मा — **जनेन्द्र आप तो ! आप में····**

यशोधर्मन — (बिना सुने) **और मालवी को भी बुला लो। आज तुम्हारे विवाह का भी निश्चय कर लेना है। अब जाकर न जाने कब लौटना हो।**

कीर्तिवर्मा — **पर मैं कहता था···**

यशोधर्मन — **तुम जो कहोगे सुनूंगा। पर सबको लेकर सूर्य मन्दिर पहुँचो। प्रजा-सभा राह देखेगी जाओ।**

(कीर्तिवर्मा बेवस-सा ठिठकता है, पर फिर तेज़ी से चला जाता है। उसके पीछे-पीछे शाहज़ादी व बालक-सहित भिक्षुणी भी जाती है। जनेन्द्र अकेले रह जाते हैं। वे सहसा अट्टहास कर उठते हैं)

यशोधर्मन — (अट्टहास) **कुमार कीर्तिवर्मा हूणों से कितना डरते हैं ! पर वे नहीं जानते कि उनकी राजनीतिक शक्ति तोड़ कर उन्हें समाप्त करने का एक मात्र वैदिक मार्ग**

उन्हें अपने में आत्मसात कर लेता है। आर्य पण्डितों ने जो वर्ण की पुकार शुरू की है वह एक दिन भारत का अहित करेगी। उसका सक्रिय विरोध भी मेरी युद्ध नीति का एक अंग होना चाहिए'''अच्छा चलूं, मैं भी तैयार होकर सूर्य मन्दिर चलूं (अन्दर की ओर जाता है। परदा गिरता है)

———

आठवाँ दृश्य

(युद्धभूमि का वह भाग जहां देवि आनन्दी का प्राणान्त हुआ था। मंच पर पुष्पों से ढकी उनकी समाधि दिखाई देती है। उसके एक भाग पर सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश पड़ रहा है। दूसरी ओर शीतल छाया। कभी कभी वायु का झौंका आकर पुष्पों को आलोड़ित कर देता है। फिर चारों तरफ महक फैल जाती है। परदा उठने पर वहां एक भीड़ लगी है। उसको पृष्ठभूमि में लेकर उसके दोनों ओर अनेक सामन्त, प्रजा के नेता, कवि वसुमित्र, कुमार कीर्तिवर्मा, भारती, मालवी हूण राजकुमारी, विजय और जनेन्द्र बैठे हैं। नीचे भूमि पर फर्श है। फर्श पर कुछ आसन हैं। उन्हीं पर सब लोग बैठे हैं। एक नागरिक जो उज्जैन के विषयपति हैं, बोल रहे हैं)

विषयपति — **जनेन्द्र। मैंने उस दिन भी कहा था। आज भी कहता हूँ। आपको अब उस जीते हुये प्रदेशों का शासन भार संभालना चाहिये।**

यशोधर्मन — **वह तो मैं संभाल रहा हूँ।**

विषयपति — **जनेन्द्र! क्षमा करें, मेरा आशय यह है कि अब आपको इस विजययात्रा से पूर्व शुभ दिन देखकर राज्य-सिंहासन पर नियमपूर्वक बैठना चाहिये।**

एक नागरिक — **निस्सन्देह ऐसा करना उचित है।**

दूसरा नागरिक यह काम तो कभी का हो जाना चाहिये था, जनेन्द्र ! पर अब भी देर नहीं हुई है ।

कीर्तिवर्मा जनेन्द्र ! मुझे लगता है—नागरिकों की मांग अनुचित नहीं है । परम्परा यही कहती है, परिस्थिति का यही आग्रह है और न्याय की यही मांग है । गुप्त सम्राट् आज नपुंसक बन गये हैं, उनकी शक्ति टूट चुकी है । परम भागवत बालादित्य के बाद गरुड़ध्वज की रक्षा करने वाला कौन रहा ! ऐसी अवस्था में भारत की जनता आपकी ओर देख रही है, जनेन्द्र !

यशोधर्मन और मैं जनता की ओर देख रहा हूँ । वही तो मेरी शक्ति है ।

विषयपति वही शक्ति आपसे मांग करती है जनेन्द्र कि आप अब नियमपूर्वक राजदण्ड ग्रहण करें ।

यशोधर्मन और अब क्या मैंने अनियम से कुछ किया है ? जनता मेरी शक्ति है । जनता ने मुझे अपना नेता चुना है और मुझे जनेन्द्र के प्रिय विरुद से पुकारा है । देवी आनन्दी साक्षी है (समाधि की ओर इंगित करता है) उन्होंने ही यह उपाधि मुझे दी थी । जब आज वे नहीं हैं तो क्यों आप उसे बदलना चाहते हैं ? देवी ने उस पर अपने बलिदान की मोहर लगा दी है । उसे अपने पवित्र रक्त से पवित्र कर दिया है । अब आप उसे न बदलो ।

[भावावेश क्षणिक सन्नाटा]

वसुमित्र जनेन्द्र ठीक कहते हैं ! जनेन्द्र की जय हो । भारत जनेन्द्र की जय हो !

समवेत स्वर — जनेन्द्र की जय हो !

यशोधर्मन — देवी आनन्दी की जय हो !

समवेत स्वर — देवी आनन्दी की जय हो !

विषयपति — जनेन्द्र ! आपने जो कुछ कहा वह उचित ही है। जनेन्द्र सदा जनेन्द्र रहेंगे, पर उससे हमारी प्रार्थना का समाधान नहीं होता।

यशोधर्मन — मैं आपका आशय समझता हूँ विषयपति। नागरिको और सामन्तो ! मैं वंश के अनुसार राजा नहीं हूँ। आप में से एक साधारण नागरिक हूँ। आपने मुझे चुना है। मैं चाहता हूँ कि आप सदा अपने शासक को चुनते रहें।

[शोर उठता है]

एक नागरिक — क्या मतलब !

दूसरा नागरिक — जनेन्द्र क्या कह रहे हैं ?

वसुमित्र — जनेन्द्र कहते हैं कि अब से मालवे में वंशपरम्परा से राजा नहीं होंगे।

यशोधर्मन — नागरिको ! कवि ने ठीक समझा। मैं कोई बात नहीं कह रहा। मालवगण की परम्परा ऐसी ही है। इस लिये मैं देवी आनन्दी की समाधि को साक्षी करके आपको स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ कि राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं कोई राज्य वंश स्थापित नहीं करूँगा। मेरे बाद मेरे कुल का कोई व्यक्ति राजगद्दी पर नहीं बैठेगा।

कीर्तिवर्मा — जनेन्द्र ! आर्य ! आप यह क्या कह रहे हैं ! यह नहीं हो सकता।

पहला नागरिक नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता ।

दूसरा नागरिक हाँ, ऐसा कैसे हो सकता है !

तीसरा नागरिक अब समय बदल गया । अब गणतंत्र नहीं चल सकते ।

विषयपति गणतंत्रों की शक्ति शीघ्र दुर्बल हो जाती है ।

पहला नागरिक नहीं, नहीं, आज एक शक्तिशाली शासक चाहिये ।

यशोधर्मन शान्त ! नागरिको शान्त ! मेरी बात समझो । मैं ठीक कह रहा हूँ । मेरे जैसा सेवक राजा बन सकता है, परन्तु प्रत्येक राजा सेवक नहीं बन सकता । मुझे सेवक बना रहने दो । मुझे राजसत्ता के मद में मत डूबने दो । मुझे शक्ति दो, आलस्य नहीं; मुझे प्रेम दो, भय नहीं, मुझे अपने पास रखो, दूर मत करो...(कण्ठावरोध, क्षणिक शान्ति । फिर कोलाहल । कवि पुकार उठता है)

वसुमित्र जनेन्द्र, यशोधर्मन की जय !

समवेत स्वर जनेन्द्र की जय !

यशोधर्मन जय जनेन्द्र की नहीं, जय जनता की । बोलो भारत माता की जय !

समवेत स्वर भारत माता की जय !

पहला नागरिक जनेन्द्र ! कुछ कहते नहीं बनता, आपकी जय हो ।

विषयपति अच्छा जनेन्द्र ! आप विजययात्रा से लौट आवें तब देखेंगे । आओ चलें ।

तीसरा नागरिक मित्रो ! चलो ।

(एक एक करके सब उठते हैं और प्रणाम करके जाते हैं)

वसुमित्र — अच्छा जनेन्द्र। मैं भी चलूं तैयारी करने ? आओ भारती।

(दोनो जाते हैं।)

कीर्तिवर्मा — मेरी यात्रा का समय भी आ पहुँचा। चलता हूँ। मुझे अभी मिहिरकुल से जनेन्द्र के चरण पुजवाने हैं, आओ मालवी।

मालवी — जनेन्द्र ! एक वर माँगती हूँ।

यशोधर्मन — माँगो देवी।

मालवी — आपकी अदम्य इच्छा के सामने कोई कुछ नहीं बोल सकता। आपने सभी परम्पराएं खण्ड-खण्ड कर दी हैं। आर्य स्कन्दगुप्त की तरह आपने अपने तपोबल से जो चाहा पाया। अब आप यहीं रहें। आप···

जनेन्द्र — मालवी ! आर्य स्कन्दगुप्त के पाने की बात तो तुमने कही, पर उस तपस्वी ने जितना दिया था उतना कौन देगा ! कष्टों की भट्ठी में उन जैसा मैं कहाँ तप पाया हूँ ! तपस्या की अग्नि में कुन्दन बनने की लालसा अभी शेष है।

मालवी — तब—तब कुछ न दे सकेंगे जनेन्द्र ! आप कुछ न दे सकेंगे। चलो कुमार।

जनेन्द्र — जनेन्द्र इतना निर्धन नहीं है जो माँगने वाले को कुछ नहीं दे सके। मैं कुमार को तुम्हें देता हूँ। मैं अपनी दक्षिण भुजा तुम्हें देता हूँ, मालवी।

मालवी — जनेन्द्र !

कीर्तिवर्मा — जनेन्द्र की जय हो। मैं कुछ निवेदन करूँ ?

जनेन्द्र — जाने की घड़ी पास आ रही है। चलो, मैं देवी को

प्रणाम करके अभी आया । वहीं सुनूंगा ।

कीर्तिवर्मा — आज्ञा देव !

मालवी — आह लोहपुरुष ! जनता के सखा ! जनेन्द्र तुम्हारी जय हो !

(दोनों प्रणाम करके जाते हैं—यशोधर्मन मौन एकाकी आगे बढ़ कर समाधि के चरणों की ओर खड़े हो जाते हैं। दो क्षण मौन रह कर वे माथा टेक देते हैं, फिर उठ कर अवरुद्ध कण्ठ से कहते हैं)

यशोधर्मन — देवी ! मैं जानता हूँ तुम्हारा मौन बलिदान सदा मेरी शक्ति बन कर मुझे आगे बढ़ाता रहेगा। तुम्हारी तपस्या मेरा कवच बनेगी । कभी नहीं सोचा था तुम इस प्रकार चुपचाप अमावस्या के अंधकार सरीखे मेरे जीवन में आवोगी और उसे अपने रक्त-स्नेह के दीप की बाती से पूर्णिमा के सरीखे प्रकाश में डुबो कर चली जाओगी । बिना कहे, बिना बोले । अच्छा देवी, तुम जहाँ भी रहो तुम्हारा विजय मेरे पास रहेगा···

(इसी समय हूण शाहज़ादी विजय को लेकर वहां आती है । वह जनेन्द्र को नहीं देखती और विजय से कहती है)

शाहज़ादी — विजय ! माँ की छाती पर मुँह रख कर प्रणाम करो, बेटा ।

विजय — (विजय फूलों पर मुंह रख देता है) प्रणाम करता हूँ !

शाहज़ादी — कहो, माँ, मुझे सदा प्यार करना ।

विजय — माँ, मुझे सदा प्यार करना ।

शाहज़ादी — माँ ! जनेन्द्र की सदा जय हो ।

विजय — माँ ! जनेन्द्र की सदा जय हो।

(जनेन्द्र सहसा आगे बढ़ते हैं)

यशोधर्मन — देवी !

शाहज़ादी — कौन जनेन्द्र ! प्रणाम करती हूँ आर्य। विजय, उठो, पिता आये हैं।

यशोधर्मन — विजय बेटा !

विजय — प्रणाम करता हूँ, पिता ! हम अभी आये हैं।

यशोधर्मन — और हम अभी जा रहे हैं। (हँसता है) तुम दीदी और माँ के साथ यहीं रहना।

विजय — हाँ जनेन्द्र ! दीदी कहती हैं—अब हम यहीं समाधि के पास रहेंगे।

यशोधर्मन — तुम्हें अच्छा लगता है ?

विजय — दीदी कहती हैं, यहाँ फूल हैं, नदी है, माँ की समाधि है, यहाँ सचमुच सभी कुछ बड़ा अच्छा है।

(बिगुल बजता है)

यशोधर्मन — अच्छा राजकुमारी चलो। सेना तैयार हो गई है। न जाने अब कब मिलें !

शाहज़ादी — जनेन्द्र ! हम शीघ्र मिलेंगे और अच्छे ग्रहों की छाया में मिलेंगे। जन्मदाता के संगी साथियों को छोड़ कर वैसे ही नहीं चली आई थी। देवी आनन्दी के आँसुओं ने धरती के अपवित्र रक्त को धो दिया। अब मेरे आँसू उसके घावों का मरहम न बने तो सारी तपस्या खण्डित हो जायेगी आर्य !

यशोधर्मन — तुम्हारी तपस्या सफल हो हुए राजकुमारी। बहुत से

लोग तुम ऐसों पर सदा 'आदर्शवादी हैं' ऐसा कह कर हँसे हैं, पर वे नहीं जानते कि आदर्श को खींच कर जो धरती पर ले आए हैं, उन्हीं के प्रयत्नों से संस्कृति और मानवता पनपी है। (बिगुल फिर बजता है) अच्छा देवी, चलता हूँ, प्रणाम।

शाहज़ादी — जनेन्द्र, आर्य!...

यशोधर्मन — कुछ कहना है ?

शाहज़ादी — हाँ, कहना था, (एकदम) नहीं, नहीं, आपसे कुछ कह कर आपका अविश्वास नहीं करूँगी, जाइए आप। प्रणाम करती हूँ। आपका पथ मंगलमय हो। पिता को प्रणाम कर विजय! वे जा रहे हैं।

विजय — प्रणाम करता हूँ, जनेन्द्र।

यशोधर्मन — जिओ मेरे बेटे! माँ की आशाएं पूरी करो। सच्चे जनेन्द्र बनो। (शाहज़ादी से) तुम्हारी बात समझता हूँ देवी। युद्ध भूमि से बाहर मैं सदा आर्य और हूणों के मिलन का प्रयत्न करूँगा।

(कह कर तेज़ी से बाहर जाता है। तुरही तेज़ होकर बजती है। विजय को गोद में लिये शाहज़ादी एकटक समाधि को देखती है। सूर्य किरण उसके मुख पर आलोक बखेरती है। पृष्ठ-भूमि में जनेन्द्र की जय उठती है। शाहज़ादी उधर ही मुड़ती है)

समवेत स्वर — जनेन्द्र की जय! जनेन्द्र की जय!

विजय — अहा ! वे घोड़े पर दौड़ रहे हैं। सिपाही उनकी जय बोलते हैं।

शाहज़ादी — तू भी बोल तो विजय !

विजय — तुम भी बोलो।

दोनों — (एक साथ) जनेन्द्र की जय !

(फिर हँसी और फिर पटाक्षेप)

नाटक के पात्र

भानुगुप्त बालादित्य	मुख्य गुप्त वंश का अन्तिम सम्राट् ।
यशोधर्मन	मालव सैनिक जो बाद में जनेन्द्र बना ।
द्रोणसिंह	भानुगुप्त का सेनापति जो बाद में सौराष्ट्र का शासक बना ।
मिहिरकुल	हूण-सम्राट् ।
महामात्य	भानुगुप्त का प्रधान मन्त्री ।
वसुमित्र	कवि और यशोधर्मन का मित्र । हूण-नारी भारती का पति ।
हरिगुप्त	मालवा का एक नया सेठ ।
ज्ञानायन	तक्षशिला के बौद्ध स्थविर ।
परिव्राजक महाराज	हूणों के अधीन मालवा का माण्डलिक नरेश । यह नाम नहीं मान उपाधि है ।
रविवर्मा	मालव-सेनापति । बाद में यशोधर्मन का साथी बना ।
कीर्तिवर्मा	दक्षिणी पांचाल के मौखरियों का एक राजकुमार । जनेन्द्र का विश्वासपात्र साथी । मालवी का होने वाला पति ।
शैवगुरु	शैवधर्मावलम्बियों के मुख्य गुरु ।
नरवर्धन	कुरु देश के वैसवंश का एक सामन्त । हर्षवर्धन इसी वंश में हुआ था ।
विजय	देवी आनन्दी का पुत्र ।
विषयाति	जनेन्द्र के अधीन दशपुर का विषयाति ।

महादेवि	सम्राट् भानुगुप्त की महारानी।
राजमाता	सम्राट् भानुगुप्त की माता।
युवति भिक्षुणी (आनन्दी)	गान्धार के महाविहार की एक भिक्षुणी।
वृद्धा भिक्षुणी	तक्षशिला की एक भिक्षुणी।
प्रेयसि	मिहिरकुल की प्रेयसि।
मालवी	यशोधर्मन के मित्र सेनापति मारुत की कन्या। कीर्तिवर्मा की प्रेयसि मधुबाला।
भारती	वसुमित्र की हूण-पत्नी।
शाहज़ादी	मिहिरकुल की पुत्री।

गौण पात्र

प्रतिहारी, नागरिक, हूण सैनिक, आर्य सैनिक, कुछ हूण सरदार, दो हूण सेनापति, मालव सेनापति, मालव-महामात्य, मधुबालाएँ आदि आदि। इसके अतिरिक्त इस नाटक में खेले जाने वाले नाटक के पात्र भी हैं पर वे इनके अतिरिक्त नहीं हैं।